कवि भारतेन्दु

118

लक्ष्मीनारायण मिश्र

कवि भारतेन्दु

[नाटक]

लक्ष्मीनारायण मिश्र

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

अपनी बात

जीवित स्मृति की परिधि में आनेवाले व्यक्तियों को नाटक के चरित्र बनाने का साहस मैं सामान्य कवि-कर्म के अनुकूल नहीं मानता। इस नाटक के सभी चरित्र मेरे जन्म के कुल बीस वर्ष पहले हम सब की तरह, हमारे समाज के प्राणी थे। हमारी ही तरह यश और अपयश, स्तुति और निन्दा का भागी उन्हें भी बनना पड़ा था। कवि भारतेन्दु के परिवार-समाज के लोग काशीपुरी में कला, साहित्य और संस्कृति के सेवी आज भी हैं। इस नाटक के कुछ अंशों से सम्भव है उनमें कुछ का मतभेद हो, यह भी सम्भव है कुछ इसे सब ओर से निर्दोष भी मान बैठें। यहां अपने पक्ष की केवल एक बात मैं कहना चाहूँगा, वह यह कि इस नाटक में मेरी बराबर चेष्टा रही है कि मैं यशस्वी भारतेन्दु का निष्ठ भक्त बना रहूँ। नाटक लिखने के पहले उनके जीवन-चरित्र का जब मैंने अध्ययन किया—उस जीवन-चरित्र का जो उन्हीं के दौहित्र श्री ब्रजरत्नदास जी ने लिखा है, जिसकी प्रामाणिकता में

सन्देह करने का अधिकार मुझे नहीं है, मैं बार-बार विस्मय से अभिभूत होकर सोचता रहा, ऐसा मधुर फिर भी निर्मम, ऐसा कोमल पर साथ ही साथ अपने प्रति कठोर भी, तिजोरी के धन और हृदय की भावमणियों का एक साथ लुटानेवाला निर्मोही, काल के प्रवाह में मेरे इतने निकट हो चुका है। कवि भारतेन्दु के चरित्र में मुझे वही आकर्षण मिला जो किसी भी महाकवि को उसके चरितनायक से मिला होगा। आकर्षण के भीतर से प्रेरणा की लहरें मिलती हैं, मुझे भी मिलीं और मैंने यह नाटक लिख दिया।

पिछले वर्ष भारतेन्दु-शती के अवसर पर प्रयाग के हिन्दी साहित्य सम्मेलन की भारतेन्दु-जयन्ती-समिति ने मुझे उन यशस्वी कवि के जीवन पर नाटक लिखने का आदेश दिया, जिसका अभिनय सम्मेलन की भारतेन्दु-शती में करने करने का संकल्प भी मुझे सुनाया गया। इतने निकट के चरित्रों को लेकर नाटक कैसे लिखा जायेगा, इतने बन्धनों के भीतर कल्पना चल भी कैसे सकेगी, नाटक देखनेवाले इतने निकट के सत्य का आघात सरलता से सह भी लेंगे या मेरे रचना सम्बन्धी धर्म पर ही सन्देह करने लगेंगे। न चाहते हुए भी मित्रों के आग्रह से मुझे नाटक लिखना ही पड़ा। आरम्भ कर देने पर मुझे उत्तरोत्तर सृष्टि का

सुख, सन्तोष और रस मिलता गया और आज अब यह पाठकों के हाथ में है। जिन घटनाओं के आधार पर नाटक का यह मन्दिर खड़ा हुआ है वे सभी श्री व्रजरत्न दास जी की लिखी जीवनी में दी हुई हैं। किसी चरित्र या किसी घटना का निर्माण मेरी कल्पना से नहीं हुआ। किस परिस्थिति में वे घटनायें घटी होंगी, उनके सम्बन्ध के व्यक्तियों की मानसिक पृष्ठभूमि क्या रही होगी? कल्पना और मनस्तत्व के संयोग में उनका चित्र जो इस नाटक में खींचा गया है उसे भी मैं अपना नहीं कहूँगा। कारण यह है कि नाटक के सभी चरित्र कवि सत्य के रूप में मेरे भावलोक में बार बार अवतरित होकर अपना कार्य करते रहे हैं और मैं उसी का लेखा लेता रहा हूँ जो अब इस नाटक के रूप में पाठकों के सामने है। व्यावहारिक बुद्धि में जिन्हें मरे आधी सदी से ऊपर हुआ, इस रचनात्मक कृति में वे जीवित दशा में मेरे सामने आये हैं। उनके कर्मसंश्रय को कवि की आंखों से देखकर और उनके संवाद में हर्ष और विषाद की वाणी कवि के कानों से सुन कर ही मैं इस रचना का कलेवर खड़ा कर सका हूँ। जो प्रसंग, व्यापार और संवाद मेरे लिये कवि सत्य बनत गये उन्हें मैं विवश होकर नाटक में रखता गया। उनके विपरीत मेरी कोई दूसरी गति नहीं

थी। मेरे भावलोक में जो चरित्र सब ओर से सत्य और स्वाभाविक बन गये, जिनका विश्वास और सहकार मुझे मिला वे ही इस बात के साक्षी भी बन गये हैं कि इस रचना में न तो शिथिल समाधि का दोष है और न किसी के प्रति मैं कहीं भी विचलित हुआ हूँ।

इस नाटक का दूसरा अंक सम्मेलन पत्रिका के भारतेन्दु अंक में प्रकाशित हुआ। इस अंक के सम्पादक श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने इस एक अंक के मोह में तीनों अंकों को पढ़कर किसी दिन मेरे कान में धीरे से अपनी सम्मति के प्रकाशन की बात भी कह दी। सम्मेलन पत्रिका में पढ़कर जिन और दो व्यक्तियों ने मुझसे इस नाटक के विषय की जिज्ञासा प्रकट की उनमें पहले कलामर्मज्ञ रायकृष्णदास जी और दूसरे थे स्वर्गीय प्रेमघन जी के भतीजे पं० नर्मदेश्वर उपाध्याय एम० ए०, एल० एल० बी०। श्री उपाध्यायजी ने भावावेश में मेरा सिर सूंघ कर मुझे आशीर्वाद दिया और हँसकर कहा—'तुमने जैसे प्रेमघन जी के साथ रहकर उनका यह चित्र खींचा है!' उपाध्याय जी को साहित्य का संस्कार उत्तराधिकार में मिला है, विद्या और वय दोनों में वे मुझसे बड़े भी हैं, सिर झुकाकर उनका आशीर्वाद मैंने स्वीकार कर लिया। श्री रायकृष्णदास जी ने पूरा

नाटक देखकर कुछ सुझाव देने की रुचि दिखाई। समूची पाण्डुलिपि देखकर उन्होंने कृपाकर कुछ सुझाव भी दिये जिनमें कुछ का उपयोग कर लिया गया है। कुछ ऐसे थे जो श्री व्रजरत्नदास जी की लिखी जीवनी के विपरीत पड़ते थे और इस स्थिति में दोनों के बीच से जहां तक बन पड़ा मैंने मध्य भाग निकाल कर भी कविसत्य को बचा लिया है। कवि भारतेन्दु के अनुज स्वर्गीय गोकुल-चन्द्र की समूची भावभूमि, पूर्वजों की प्रतिष्ठा और भावी पीढ़ी की मंगल कामना, हरिश्चन्द्र के प्रति कहे गये उनके एक वाक्य में ही इस नाटक में व्यक्त हो गई हैं—

गोकुलचन्द्र—"आप अपने यश के शरीर में जीते रहेंगे, पर इस घर की अगली पीढ़ी किस पर जीती रहेगी यह नहीं सोचते आप!"

कोई भी परिवारपति इस स्थिति में यही कहता, पर भारतेन्दु जी शंकर जी की भांति कालकूट पीने के लिये ही पैदा हुए थे, अपने शरीर के बन्धन में रहकर भी जो जीवन्मुक्त हो चुके थे, लोक-व्यवहार की इस बात के सामने सिर कैसे झुकाते। सर्वमेध करनेवाले में संग्रह की वृत्ति कहां से आती? व्यवहार की भूमि पर साथ न चलकर भी दोनों भाइयों में जो परस्पर प्रेम का आकर्षण बना रहा वह इस नाटक में कई अवसरों पर खुल गया है।

चरित्रों के कर्म और संवाद के मात्रा विचार में मैं बराबर अनासक्त रहा हूँ। कवि कर्म में आसक्ति का आ जाना उसकी सृष्टि को कृत्रिम कर देता है। जिन चरित्रों का चित्रण इस नाटक में हुआ है वे अपनी मानसिक पृष्ठ-भूमि में यदि सत्य नहीं हैं तब फिर इस रचना का आधार असत्य है पर जो वे वहां सत्य हैं तब फिर पाठकों को उनके प्रति सहानुभूति और विश्वास से काम लेना होगा। नाटककार का सम्बन्ध उन चरित्रों के साथ उनकी सर्जनात्मक संगति तक ही सीमित है, इससे अलग हटने पर वे अतीत के अगाध समुद्र के बुलबुले हैं, और उनमें किसी के साथ किसी प्रकार का लगाव होता ही क्यों?

इस नाटक से कवि भारतेन्दु के व्यक्तित्व और वातावरण का बोध जो पाठकों को हो सके, उस अल्हड़ हृदय की धड़कन जो वे देख सुन सकें तब मेरा यह श्रम सार्थक होगा, नहीं तो अपने इतिहास के एक महान् मनीषी को स्वप्न में देख लेने भर का फल मुझे मिल जायेगा और लेखनी की यह यात्रा भी निष्फल नहीं होगी।

विजयादशमी, सं० २०१३
प्रयाग

—लक्ष्मीनारायण मिश्र

कवि भारतेन्दु

नाटक के पात्र

पुरुष-पात्र

हरिश्चन्द्र (भारतेन्दु)

गोकुलचन्द्र

प्रेमघन

राधाचरण (गोस्वामी)

राधाकृष्णदास

प्रयागदत्त

स्त्री-पात्र

माधवी

मल्लिका

——:०:——

पहला अंक

[काशी में एक सँकरी गली के किनारे का मकान, जिसके दूसरे तले के किवाड़ खुले हैं, रात्रि एक प्रहर के ऊपर जा चुकी है, आरम्भिक बरसात के बादल आकाश में चन्द्रमा के साथ आँख-मिचौनी कर रहे हैं, ऊपर बड़े कमरे में छत से लटके झाड़ में मोमबत्तियाँ जल रही हैं, एक ओर दीवाल पर सोनहले चौखट में पुरुष शरीर से भी बड़ा हलब्बी आइना लगा है, उसकी दाँई ओर प्रसाधन-आधार पर शृंगार की सामग्री कई आकार के पात्रों में रखी है, बाँई ओर छोटी चौकी सुनहली जरी के मखमल से ढकी है, मसनद भी उसी रंग का लाल मखमल पर कामदार है, मसनद पर सितार टिका है, कमरे में सभी दीवालों पर चित्र हैं, दो खूँटियों में चाँदी की मूठ के चँवर श्वेत झाग से लटक रहे हैं, शीशे के आगे पलंग के सिराहने चित्रित लकड़ी में राधाकृष्ण का चित्र लगा है और पैताने इस चित्र के ठीक सामने भी शीशा बेल-बूटे वाली लकड़ी में लगा है, पलंग के आगे दोनों ओर दो नरम गद्दी वाले मोढ़े हैं, नीचे गच पर पूरे कमरे भर में कालीन बिछा है, जिसके बीच में उजली झालर वाली चादर बिछी है, पलंग की चादर हरे रंग की है जिसकी लाल झालर सब ओर लटक रही है, नीचे का गद्दा देखते ही बहुत

नरम लगता है जिसके ऊपर की चादर में ऊपर-नीचे लहरें सी पड़ गयी हैं।]

नेपथ्य में—[युवती का कोमल कंठ] अब आप लगाने बैठी हैं, पर चूना और कत्था मिलने न पाये समझ गईं, पनडब्बा भर लेना, पैर दबाकर आना।

नेपथ्य में—[दूसरा स्त्री-स्वर] आपके सामने भी ...

नेपथ्य में—[पहला स्वर] मेरे उनके, हाँ किसके...जानती है ?

नेपथ्य में—[दूसरा स्वर] कुँवर कन्हैया के, कोई सौदा लेने जाती हूँ तो दूकानदार भी उन्हें कुँवर कन्हैया कहते हैं, सागवाली कुँजड़िनें, तमोलिन सभी तो कहती हैं।

नेपथ्य में—[पहला स्वर] मेरे क्या हैं वे ...

नेपथ्य में—वही जो राधा के कन्हैया थे। [**हँसी की ध्वनि**]

नेपथ्य में—[पहला स्वर] किसी से कहना मत...

नेपथ्य में—[दूसरा स्वर] हूँ... किससे छिपा है...रात के चाँद को कौन नहीं जानता ?

[दोनों की हँसी गूंज जाती है, पलंग के सिहारने के द्वार से माधवी का प्रवेश। प्रायः बीस वर्ष की सोने की धूल जैसी रंगवाली तरुणी, लम्बी नुकीली चंचल आँखें, लम्बी गझिन बरोनियाँ, भौंह के बाल घूमकर नागिन सी कुण्डली बना रहे हैं, सँकरा ललाट, पतले ओठ, साँस लेने के साथ नाक के पुरे उठ बैठ रहे हैं, हरे रंग की सुनहले कामवाली साड़ी का छोर कन्धे के नीचे लटक रहा है, कानों में तरकी, छाती पर चन्द्रहार प्रकाश में जगमगा रहे हैं, कलाइयों में केवल चूड़ियाँ हैं, गंगा-जमुनी थार में फूल की

मालायें लिये वह प्रसाधन-आधार के निकट खड़ी होकर थार उसी पर रख देती है और उसमें से एक माला निकाल कर शीशे के सामने खड़ी होकर अपने जूड़े में लगाती है, ओठ दबाकर, सिर तिरछाकर शीशे में अपना रूप देखती है जो किसी भी कवि को, कलाकार को, वीर को, योगी को विवश करने में समर्थ है, वहीं खड़ी होकर गुनगुनाती रहती है।

बाहरी द्वार से प्रयागदत्त का प्रवेश उजली चौबन्दी और धोती पहने। अवस्था प्रायः ३० वर्ष, ललाट पर त्रिपुंड, सिर पर पण्डिताऊ टोपी।]

माधवी—[घूमकर] पालागन पंडितजी [**मुस्करा उठती है**]

प्रयागदत्त—जीवित रहो अप्सरा! तुम्हारे भाग्य से रम्भा, उर्वशी डाह करें।

माधवी—[कृत्रिम क्रोध से] क्या कह रहे हैं? अप्सरा हूँ मैं अब? अप्सरा किसी एक की बनकर नहीं रहती।

प्रयागदत्त— सोलिये यह काशी अमरावती से बड़ी है। वहाँ सबकी सब हैं और **तुम** यहाँ एक की हो। वहाँ वह सब बस हँसना जानती हैं, तुम क्रोध करना भी जानती हो... आधी हँसी और आधे क्रोध में तुम्हारा मुख...

माधवी—बस...बस... अब चुप रहें, भाँग लग गयी है आज क्या? मन उड़ा जा रहा है वहाँ...उस अमरावती में जहाँ वे अप्सरायें हैं।

प्रयागदत्त—कहाँ उड़ेगा अब...[**हँसने लगता है**]

माधवी—वहीं जहाँ सबकी सब हैं, इन्द्र की सभा में...रम्भा की

चोटी से लगा बाँध लीजियेगा, ब्राह्मण मर न जाय, इन्द्र इस डर से...[हँसती है]

प्रयागदत्त—धरती के इन्द्र बाबू हरिश्चन्द्र का दूत बन कर उनकी रम्भा के पास आया हूँ, मैं...

माधवी—[सांस रोककर] सच ?... भेजा उन्होंने या भाँग भवानी की मौज में राह भूल गये ?

प्रयागदत्त—अभी आ रहे हैं वे...यह पत्र है...इसी में नीचे यह जो मल्हार लिखा है...समझ रही हो...

माधवी—हां तब...किसकी मल्हार है यह...?

प्रयागदत्त—इसे याद कर लो, सितार पर यहीं तुमसे सुनेंगे ।

माधवी—भूपाल की मलका शाहजहाँ बेगम की बनाई है, यह यहाँ कैसे आ गयी ?

प्रयागदत्त—बाबू साहब से राय माँगने के लिये बेगम ने कई गाने उनके पास भेजे हैं। यह भी लिखा है कि सोध कर छपा देंगे।

माधवी—कभी देखा है उन्होंने...

प्रयागदत्त—हां...

माधवी—[घबड़ाहट में] कब गये थे ?

प्रयागदत्त—हैं ! हैं ! रो पड़ोगी क्या?... कहो भी क्या हो गया ?

माधवी—कब गये थे उनके यहां ? यही बात मुझसे छिपी कैसे रह गयी ?

प्रयागदत्त—अच्छा..तुम डर रही हो कहीं वे उनके...

माधवी—उनका कुछ भी मुझसे छिपा नहीं है।

प्रयागदत्त—पगली... हूँ... स्त्री को जब ब्रह्मा बनाने बैठे थे...सन्देह से उसका हृदय पहले बनाया..तुम डर गयीं कि कहीं बेगम तुम्हारे उनको....

माधवी—और तुम्हारा पुरुष का हृदय किस चीज से बनाया था ?..

प्रयागदत्त—तुम लोगों के लाल तलवे से, टेढ़ी भौं से, कटीली आँखों से..अपने पुरुष के साथ किसी दूसरी का नाम न आने पाये। कहीं आ गया फिर तो तुम लोगों का सन्देह करवट लेने लगा।

माधवी—[कातर होकर] नहीं बताओगे ?

प्रयागदत्त—इस देह से वे कभी उनके पास नहीं गये; पर उनके यश का शरीर वे देख चुकी हैं। वे जानती हैं कि भारतेन्दु बाबू हिन्दी भाषा के मुकुट हैं। उनके परिचय का चाव किसे नहीं है। भूपाल की रूप रतन जी ने....

माधवी—यह किस का नाम है ?

प्रयागदत्त—हिन्दी पदों में बेगम ने अपना यही उपनाम रखा है। मैं, अब चलूंगा...नहीं तो फिर तुम न यह पद याद करोगी न उनके सामने गा सकोगी।

माधवी—कह दूंगी पंडित जी बझाये रह गये मुझे...

प्रयागदत्त— यह डर होता तो वे तुम्हारे पास भेजते नहीं मुझे... वह जानते हैं यह ब्राह्मण बिना दांत का है।

माधवी—तभी दो के रहते तुम्हारा तीसरा ब्याह जो करा दिया उन्होंने...

प्रयागदत्त—उस ब्याह के लिये सारा खर्च दिया और उन्हीं के आशीष से मुझे पुत्र भी हुआ।

माधवी—कलजुग के ब्राह्मण को वैश्य का अशीष अब बराबर फलेगा। इस की राह आप से खुल गयी।

प्रयागदत्त—माधवी !

माधवी—जी...

प्रयागदत्त—सचमुच रंज हो गयी हो मुझसे...

माधवी—वसन्त के सखा पवन से माधवी लता कब रुष्ट होती है, उसके अंग-अंग चाहे जितने झकझोर उठें। पूरे पन्द्रह दिन के बाद आज दर्शन होंगे। सुनती रही स्वास्थ्य अच्छा नहीं है, जी में होता था उड़कर देख आऊँ...पर उस घर में...

प्रयागदत्त—तुम्हारे कुशल-समाचार के लिये दिन में दो बार मैं बराबर आता रहा।

माधवी—कैसे पूछूं...?

प्रयागदत्त—क्या...?

माधवी—रहने दीजिये...

प्रयागदत्त—कहो भी...

माधवी—वह मल्लिका कैसी है ?

प्रयागदत्त—रूप में तुम्हारे आगे नहीं टिकेगी वह..पर वह कविता करती है। कई भाषायें जानती है... उजली साड़ी पहनती है...गहने कोई नहीं..माधवी के रंग और गन्ध की मोहिनी उसमें नहीं है।

माधवी—और वह अब इधर आने का अवसर नहीं देती।

प्रयागदत्त—पर सिवा खिड़की से देख लेने और हाथ जोड़ लेने के उसे अभी तक कुछ अधिक नहीं मिला।

माधवी—दोनों मकान गली के दो ओर..दोनों की खिड़कियां भी आमने-सामने हैं ?

प्रयागदत्त—ऊपर ही ऊपर एक से दूसरे में जाया जा सकता है।

माधवी—यह मेरे खोटे भाग्य का दोष है। [निराश होकर नीचे देखने लगती है।]

प्रयागदत्त—तुम मदिरा हो और वह दूधी है। दोनों का काम एक से नहीं चल सकता।

माधवी—किसी दिन उसे देख लेती। पर कैसे..आज कहूंगी उनसे...

प्रयागदत्त—कहना वे तुम दोनों को एक जगह भी रख सकेंगे।

माधवी—मैं उसका पर धो लूंगी, कुल में, गुण में वह मुझसे बड़ी है।

प्रयागदत्त—सो कैसे ? तुम क्षत्रिय की लड़की हो...

माधवी—उसका जन्म तो मैं नहीं जानती...पर मेरी तरह मुसल्मान तो वह हुई नहीं।

प्रयागदत्त—यही जानकर कि तुम धर्म भी छोड़ चुकी हो..तभी तो शिव जी ने जैसे विष उठाकर अपने कंठ में धर लिया था...हमारे बम्भोला तुम्हारे उद्धार में लग गये। अब तुम केवल उनकी हो। गंगा में नित्य नहाकर तुमने अपना पाप धो दिया।

माधवी—राधा को जैसे भगवान् मिल गये, मुझे भी...

प्रयागदत्त—उन्होंने राज्य के लिये उस बेचारी को छोड़ दिया, यहाँ तुम्हारे लिये राज्य छोड़ दिया गया। मल्लिका की

चिन्ता न करो, वह बड़ी भली है, उसकी आँखों में विश्वास है, तो फिर मैं चलूं...

माधवी—हाँ... अभी यह पद बाँध लूँ...

[प्रयागदत्त का प्रस्थान, माधवी सितार लेकर, पलंग के आगे नीचे बैठ कर हाथ में कागज धीरे-धीरे लेकर गाने लगती है, सितार के तारों पर उसकी उँगलियाँ जैसे ऊँघती-सी चल रही हैं, सितारके स्वरोंमें मिलकर उसका स्वर सम्मोहन पैदा कर रहा है]

हमरे पिया परदेश बिलमि रहे,
इत बदरा दिन रैन घुमरि रहे,
ना लिखी पाती ना खबरि जनाई,
कैसी बदरिया कारी छाई।
झींगुर मोर चिघार पुकारे,
कल न परे मोंहिं बिरह के मारे,
पापी पपीहा ने आन जगाई।

[पंक्तियों के दुहरा कर गाने में उसका स्वर तीव्र कंपन भरने लगता है।]

हरिश्चन्द्र—[प्रवेश कर, टोपी हाथ से उतारते हुए] विरह में नींद कैसे आती है ? **[पलंग पर पैर लटका कर बैठते हैं, सिरहाने से तकिया उठाकर जाँघ पर रख लेते हैं।]**

माधवी—[प्रसाधन-आधार से माला उठाकर उनके गले में डालती हुई] देह का धर्म जब मन पर छा जाता है ...... तब

नींद आ जाती है और फिर पपीहा की टेर पर उचटती है। [**बैठकर दोनों हाथों में पैरों को बाँध लेती है।**]

हरिश्चन्द्र—बेड़ी डाल रही हो?

माधवी—पन्द्रह दिन के बाद मेरा भाग्य जगा है आज, और फिर कितने दिन बीतेंगे .... [**सिसकन लगती है**]

हरिश्चन्द्र—[जेब से रूमाल निकाल कर उसकी आँख पोंछते हुये] मुझ पर क्या बीती है, यह तो तुम जानती नहीं।

माधवी—उसे भोगने में भी मैं साथ रहती।

हरिश्चन्द्र—बाप दादों की कमाई फूंक चुका मैं ...... कोई पेड़ भी ऐसा नहीं है जिसे मैं अपना कहूँ, घर के भला मनानेवाले सब यही कह रहे हैं।

माधवी—और आप मान लेते हैं, बटवारे में नकद कितना मिला आपको, ननिहाल का धन किस चालाकी से ले लिया गया आप टुकुर-टुकुर ताकते रह गये, यही बाकी है उस घर से भी आपको निकाल बाहर करें वे लोग। आप निकल भी जायेंगे। किसी दिन आपके भाई ड्योढ़ी पर खड़े होकर कह दें, भीतर न आना।

हरिश्चन्द्र—मन का राजा कोई होता है, कोई धन और धरती का, छोड़ो इस चिन्ता को। उस धन में देश-द्रोह की गन्ध थी .. यह भी एक दुर्घटना थी .. माधवी! मेरा जन्म उस घर में हो गया। गंगा में डूब जाना, किसी पेड़ से गिर पड़ना, ऐसा ही है मेरा यह जन्म।

जन्म लकर मेरे दो लड़के जो पहले मर गये वह भी अच्छा हुआ! . नहीं तो उस धन पर उन्हें जीना होता, जिसके लिये मेरे परदादा अमीनचन्द ने सिराज नवाब के सामने ब्राह्मण का पैर छूकर अंग्रेजों को यहाँ टिकने का अवसर दिया। दूर बंगाल में ... फिरंगियों की इस अग्नि में जो उन्होंने अपने विश्वास की आहुति दी उसी में अब यह अभागा देश जल रहा है।

माधवी—और इस देश के साथ स्वामी भी जल रहे हैं।

हरिश्चन्द्र—घरवाले मुझे विलासी कह रहे हैं, व्यसनी कह रहे हैं, कह रहे हैं मुझे बलि, कर्ण, विक्रम, भोज सा दान में नाम कमाना है, देशभर में मेरे विलास का बवंडर उठाया जा रहा है, सौ देकर महाजन ने हजार वसूल किया मुझसे। [**ऊँची साँस लेकर चुप हो जाते हैं**]

माधवी—तबियत बिगड़ जायेगी। वह घर छोड़कर, आप यहीं बराबर रहें मेरे पास पचास हजार की पूंजी अभी है।

हरिश्चन्द्र—[हँसकर] वह मेरे पाँच दिन के लिये पूरी पड़ेगी, कवि और लेखक, हाथी दाँत के चित्रकार, तेल और इत्रवाले कहाँ जायेंगे? मन में आता है कहीं चलकर छिप जाऊं। पर भारतेन्दु कहा गया मैं कहीं छिपने को? आकाश में तारे भी जगमगाते हैं फिर चन्द्रमा कहाँ छिपेगा? मेरे प्रेमियों की सेना इस घर में कहाँ अटेगी?

माधवी—अब लेट रहिये ... पसीने से भीग रहे हैं तब तक मैं पंखा... [**शीशे के पीछे से मोरपंखी निकाल कर झलने लगती है**]

हरिश्चन्द्र—देखो कौन है ? किसी के पैर की धमक सुन पड़ी है ।

[उत्सुक हो उठते हैं]

माधवी—[द्वार के बाहर देखती हुई] क्या चाहती हो ? ... कौन हो तुम ? ...

हरिश्चन्द्र—[उठकर आगे बढ़ते हुए] मल्लिका ! चलो आओ ...

माधवी—[सम्हलती हुई] यही हैं मल्लिका देवी ! ...

मल्लिका—[हाथ जोड़कर] नमस्कार बहन !

माधवी—[ठिठक कर देखती हुई] तो तुम ...

हरिश्चन्द्र—नमस्कार का उत्तर दो ...

माधवी—[झपटकर उसके गले लगती हुई] यह बंगाल में होता होगा । काशी में हम नमस्कार हाथ जोड़कर नहीं करतीं ... गले लगकर करती हैं ।

हरिश्चन्द्र—[पलंग पर बैठ कर सिरहाने हाथ से संकेत कर] चलो तुम यहाँ बठो मल्लिका ! और तुम यहीं पैताने बैठ कर रूप रतन का यह पद गाओ । मुसलमान बेगम ऐसा पद बना ले और सारे राजपूताने में कोई रानी ऐसी न निकले ।

मल्लिका—[सहमकर, साड़ी का छोर सिर पर खींचती हुई] बैठ जाती हूँ मैं यहीं धरती पर...

हरिश्चन्द्र—[उठकर खड़े होते हुए] आ जाओ यहाँ, जो तुम दोनों मुझे प्रेम करती हो तो तुम्हें आपस में भी प्रेम करना होगा, धन फूँक कर सब और मैंने केवल प्रेम बटोरा है।

मल्लिका—फिर भी यह बड़ी हैं...ऐसा ही हो तो मुझे पैताने, पैरों के समीप...

माधवी—[खुलकर हँसती हुई] पर पैरों के निकट का मेरा अभ्यास पुराना है, लगी आदत कब किसकी छूटी है ?

हरिश्चन्द्र—माधवी मेरी रति है और तुम सरस्वती हो, तुम्हें देख कर मेरी बुद्धि जागती है और इसे देखकर...

माधवी—क्या...मुझे देखकर कुछ नहीं...

हरिश्चन्द्र—तुम्हें देखकर...हृदय कहना नहीं जानता...तुम हृदय के समीप हो, मल्लिका मेधा के...इन दोनों के बीच में मैं हूँ...

माधवी—भगवान् की तरह...

मल्लिका—उहूं...केवल पुरुष की तरह...

हरिश्चन्द्र—देखना कहीं तुम दोनों अपनी जीभ के बीच में मुझे न कर लेना।

मल्लिका—इसीलिये तो भरसक ओठ नहीं खोलती, मैं...

माधवी—कविता भीतर-भीतर रस की झड़ी लगाती है...मेरी तरह गाना हो...हृदय का रस निचोड़कर हवा में उड़ाना हो तब...

हरिश्चन्द्र—तुम दोनों के गुण पर ही मैंने दोनों का नाम रख दिया।

माधवी अपनी गन्ध हवा में उड़ाती है...मल्लिका उसे भीतर ही भीतर छिपाये रहती है ।

माधवी--[विस्मय से] इनका नाम कुछ और था...?

हरिश्चन्द्र--तुम्हारा नाम पहले किशोरी था...फिर मुसलमानी नाम तुमने रख लिया, मेरे निकट जब तुम आई माधवी बन गयीं, स्त्री का नाम उसके प्रेम के अनुसार होना चाहिये, लता की तरह जो सब ओर से पुरुष को बाँध ले वह माधवी है, मल्लिका है । जब तक यह नहीं तब तक तुम किशोरी हो और यह चन्द्रिका है ।

माधवी--तब इनका घर का नाम चन्द्रिका है, इनकी कविता में इनका यह नाम सुना तो समझा यह इनका उपनाम होगा ।

हरिश्चन्द्र--जब यह कलकत्ते में रहती थी तब इसी नाम से कविता लिखती थी, यहाँ जब मैं मल्लिका नाम से बुलाने लगा इसने कविता में यही नाम देना चाहा...जानती हो क्यों मैंने रोक दिया ?

माधवी--सूझा होगा कोई छल कपट...

हरिश्चन्द्र--एं, मैं छल करता हूं... ?

माधवी--प्रेम करना क्या छल नहीं है ? आपके भाई के यहाँ मैं करज लेने जाती थी, उन्होंने उसमें मेरा मकान ले लिया । पर जिसने मन और प्राण ले लिया, पहले के सभी भौंरों को अपने प्रेम की आग में जलाकर भस्म कर दिया... वह क्या है...वही जाने । हाँ तो कविता में यह मल्लिका क्यों नहीं लिखने पातीं ?

हरिश्चन्द्र—मेरे दिये नाम का सम्बन्ध मेरे साथ है। कविता में आ जाने पर उस नाम का नाता दूसरों के साथ भी लग जाता। माधवी अकेली मेरी है और मल्लिका भी। दूसरों के लिये तुम किशोरी हो और यह चन्द्रिका है। उठाओ सितार यहीं मेरे पैताने रति की तरह रूप रतन का पद गाओ, और मेरी सरस्वती यहाँ बैठे।

[माधवी सितार लेकर पैताने बैठती है। मल्लिका सिरहाने पलंग की पाटी पर बैठती है, हरिश्चन्द्र उसका कन्धा पकड़ कर पीछे खींच लेते हैं और उसकी देह की टेक लेकर आधे लेटे से बैठ जाते हैं।]

हरिश्चन्द्र—देख लो मल्लिका श्वेत साड़ी में बिना किसी गहने के सरस्वती जैसी देख पड़ती है।

माधवी—[सितार बजाती हुई] कमल और हंस की कमी है...

[बाहर की ओर से प्रयागदत्त का प्रवेश]

हरिश्चन्द्र—बैठो रहो तुम दोनों...[**आधे उठने के बाद दोनों बैठ जाती हैं**] हाँ, क्या है पंडित ?

प्रयागदत्त—सरकार! गोसाईं हैं राधाचरण जी आ रहे हैं। अपने पिता के सो जाने पर आयेंगे...नौकर नीचे खड़ा है। कहाँ आने को कहा जाय ?

हरिश्चन्द्र—माधव सम्प्रदाय के गोस्वामी...

प्रयागदत्त—जी...

हरिश्चन्द्र—पिता के जागते मुझ नास्तिक से मिलने का साहस वे नहीं कर सकते। वे जान जायेंगे तो उन्हें पंचगव्य लेना होगा।

मल्लिका—तब तो यहाँ से...

माधवी—कहाँ से...यहाँ आने में उनका धर्म बिगड़े तो फिर न आयें।

हरिश्चन्द्र—यहीं आयेंगे। मेरा साहस देख लें वे...और फिर जो बात काशी का बच्चा-बच्चा जानता है, भगवती भागीरथी जानती हैं, भगवान् शंकर जानते हैं वह उन्हीं से क्यों छिपा रहे...कह दो नौकर से यहीं लिवा लाये।

प्रयागदत्त—[असमंजस में] यहाँ...

हरिश्चन्द्र—हाँ...यहाँ...[**मुस्कराते रहते हैं**]

प्रयागदत्त—बैठेंगे कहाँ..? [**विस्मय में देखता है**]

हरिश्चन्द्र—इसी पलंग पर...हम तीनों नीचे बैठेंगे।

प्रयागदत्त—कोई सुनेगा तो क्या कहेगा ? [**उद्वेग और विस्मय में**]

हरिश्चन्द्र—उनका धर्म जो ऐसे कच्चे धागे से टँगा है कि हवा लगते टूट जाय तब उसका टूट जाना ही ठीक है, पर जो वही धर्म मानते हैं जिससे व्याध, गीध, गणिका तर गये...तब फिर यहाँ बैठकर वे अशुद्ध न होंगे, उनके आने से यह स्थान शुद्ध हो जायेगा।

प्रयागदत्त—बड़ी बदनामी होगी, बड़े गोस्वामी जान जायेंगे तो उनको जीने न देंगे।

हरिश्चन्द्र--अरे! चलो। अपने पुत्र में जितना तुम्हारा अनुराग है, उससे कम उनका राधाचरण जी में नहीं है। एक सौ ग्यारह के छाप से, त्रिपुण्ड से, तुलसी या रुद्राक्ष की माला से, रामनामी या त्रिशूल के चिह्न से हृदय नहीं बदल जाता। राधाचरण जी के बाप और गणेश के बाप के हृदय समान हैं।

माधवी—गणेश कौन...?

मल्लिका--[हँसकर] पंडितजी के बड़े लड़के..

माधवी--तब तुम सब जान गयी और मैं पहले से रहकर भी...

मल्लिका--नव वर्ष के गणेश मेरे साथ खेलते रहते हैं, नागरी और बंगला अक्षर मैं उसे बता चुकी हूँ...

माधवी—यह पढ़ना-पढ़ाना मुझसे तो होता नहीं..बाल झाड़ देती, उबटन लगा देती, आंख में काजल, नहला-धुलाकर लक-झक, देखनेवाली ललक उठें, नौ साल बहुत हैं।

प्रयागदत्त--हाथ जोड़ता हूं रानी। ब्राह्मण के बच्चे को अक्षर सीखने दें.. नहीं तो किसी दिन तबला लेकर बैठ जायेगा किसी कोठे पर।

माधवी--[हँसकर] वह गुण सिखाओ उसे जो आगे चल कर काम दे। इस दरबारी बाप का बेटा वेद नहीं पढ़ेगा।

हरिश्चन्द्र—क्यों तंग कर रही हो पंडित को? [**हँसने लगते हैं**]

माधवी--तबला लेकर कोठे पर बैठ जानवाले राजभोग पाते हैं,

व्याकरण रटनेवाले पताका सी चुटिया फहराकर आज यहाँ कल वहाँ। कोई ऐसी विद्या सीखे जिससे पेट तो ठंडा रहे। क्यों पंडित जी सोच लीजिये, मेरे पास रहने दीजिये, फिर बारह के बाद देख लीजियेगा ।

प्रयागदत्त—अच्छी बात कल पहुँचा दूँगा ।

हरिश्चन्द्र—पागल बन रहे हो...नहीं जानते इसे...आती थी ऋण लेने और ले लिया क्या ?

माधवी—इसी देह के बच्चे की तरह रक्खूँगी सोच लीजिये ।

मल्लिका—और मैं कैसे रखती हूँ ? सारा दिन..रात को जब तक सो नहीं जाता।

माधवी—कलकत्ते से तुम काशी आई मेरा कुछ छीन लने..कुछ मैं भी छीन लूँ तुम्हारा ।

प्रयागदत्त—ले आता हूँ मैं उसे यहीं, आप दोनों में जो उसे अपना सके ।

मल्लिका—पर मैं इस होड़ में नहीं पड़ूँगी..मुझे यह जो दया कर दे देंगी मेरा सन्तोष उसी से हो जायेगा ।

माधवी—च...चा नहीं ऐसे उदास होकर नहीं। मैं हँसी कर रही थी। फिर भी अब उसे देखने का मन हो आया है, अपने साथ ही लेती जाना, देख भर लेने दो ।

मल्लिका—अब आप उसे यहां ले आइये ।

प्रयागदत्त—सरकार क्या कह दूँ उससे..?

हरिश्चन्द्र—किससे...?

प्रयागदत्त—गोस्वामी के नौकर से ।

हरिश्चन्द्र—अरे मैं तो तुम लोगों की मौज में भूल ही गया । देख लिया माधवी! मल्लिका मेधा है । तुम्हारे साथ होड़ में नहीं पड़ती ।

प्रयागदत्त—क्या कह दूं उससे..

हरिश्चन्द्र—हां [सोचकर] देखो समाज में जो सब मानते हैं मैं उसके आगे बराबर जाता हूँ । कह दो उन्हें यहीं लिवा लाये । तुम नीचे की बैठक में रहो । आजाने पर...हां वह चांदी की दीवट पोंछ लो । उसमें इतर भर कर सीढ़ी पर...बाल दो, [**माधवी की ओर देखकर**] हैं यहां न...

माधवी—तीन पूरे बोतल, एक बोतल तो पिछले साल का है ।

हरिश्चन्द्र—पिछले साल दीवाली में उसे बाल नहीं दिया ।

माधवी—बाला था फिर भी बचा रह गया ।

हरिश्चन्द्र—इस साल की ताजी बोतल दे दो ।

माधवी—गुलाबवाली ।

हरिश्चन्द्र—चन्दन की है न... दो शीशी ली थी वह दक्षिणी गन्धी दे गया था ।

माधवी—एक की आधी खर्च हो चुकी है ।

हरिश्चन्द्र—वही दे दो । माधव सम्प्रदाय के गोस्वामी के स्वागत योग्य यहां और क्या है, चन्दन की गन्ध देवताओं को प्रिय है । गोस्वामीजी नर देह में देवता हैं ।

[**माधवी प्रसाधन आधार की ऊपरी खूंटी खींचती है ।**
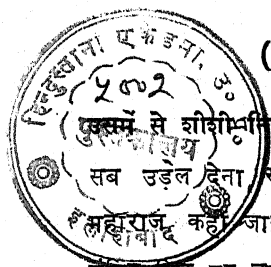
[उसमें से शीशी निकाल कर प्रयागदत्त को देती है।]

सब उड़ेल देना समझे। अधिक देर तो रहेंगे नहीं बड़े महाराज, कहीं जाग जायँ, और इन्हें न देख कर सारा मंदिर सिर पर उठा लें।

[प्रयागदत्त का शीशी लेकर प्रस्थान]

मल्लिका--माताजी ने कल बुलाया है।

हरिश्चन्द्र--तुम उनके यहां से ही यहां लौटोगी; यह जानकर भी कुछ नहीं पूछा मैंने ऐसा भुलक्कड़ नहीं था मैं; कुछ गड़बड़ है। [**उदास हो उठते हैं**]

माधवी--[घबड़ाकर] क्या? ...

हरिश्चन्द्र--मेरे दिन निकट आ रहे हैं माधवी! अब कुछ याद नहीं पड़ता। यहां भौंह में जैसे कुछ तान कर बाँध दिया हो! साँस भी कभी-कभी झटके से लेनी पड़ती है, नहीं तो पता नहीं कहां अटक जाती है, अकर सकर होने लगता है। मोती का भस्म इतना खा गया पर कुछ बनता नहीं देख पड़ता।

माधवी--कुछ पहले जना देना गंगा में समा जाऊँगी। [**गहरी साँस लेती है**]

हरिश्चन्द्र--यमराज के गले की घंटी भी मुझे डरा न सकेगी। तुमसे कुछ कहना नहीं चाहिये ... पर सोचता हूँ तुम दोनों को स्वीकार करना पाप नहीं हुआ। तुमसे कुछ भी छिपाना पाप होगा, दूसरों की दया पर जीने का

दंड मुझे भगवान नहीं देंगे, दोपहर के सूर्य की तरह मैं डूब जाऊंगा।

माधवी—सिर पटक दूंगी मैं ...... यही सब करना था तो मुझे पाप के उस कुंड से निकाल क्यों लाये ? **[सिसकने लगती है]**

हरिश्चन्द्र—मैं नहीं जानता । इतना सुना था मैंने जगतगंज की विधवा किशोरी, कुलीन क्षत्रिय की लड़की है । बाप के कठोर शासन से भाग कर किसी मुसलमान के घर चली गयी है। पन्द्रह दिन तक जहाँ बैठा बस तुम्हारी बात सब कहीं यहाँ के रईस चलाते रहे। सुनते-सुनते कान पक गये । कोई कहता था उसका रंग तपे सोने का है, कोई कहता चोटी ऐंड़ी तक पहुँचती है, नीले कमल की पंखुड़ी सी आँखों में लाल डोरे, देखते ही चुभनेवाली बरौनियाँ, ओठों में अमृत का रंग ......
[चुप होकर जैसे कोई भूली बात याद करने लगे हों ।]

मल्लिका—तब कहें उनमें कुछ ने अमृत का रंग भी देखा था ...
[धीमे हँसती है]

हरिश्चन्द्र—जो पहल कभी नहीं देखा था उसे वे अमृत मान गये । कहीं और देख पाते तो इतने भाव से न कहते । यहां के रईसों के लड़कों का पहला काम था तुम्हें देखने जाना, गंगा और शंकर को वे भूल गये थे । लौटकर पसीने-पसीन होकर वे जब तुम्हारी बातें करते

थे ...... मेरा मन कांप जाता था ... तुम पर रुपया वे बरसा सकते थ । पर तुम्हें उस पंक से निकाल कर ठोस धरती पर खड़ी करने का बल किसी में न था ।

मल्लिका—तब कलकत्ते की ब्रह्म-मंडली का प्रभाव आप पर भी पड़ गया था । वहाँ के सुधारक भी सुन्दरी विधवाओं का ही उद्धार करते थ ।

हरिश्चन्द्र—ठीक कह रही हो । बंगाल का ब्रह्म समाज रूप के सम्मोहन में ही पैदा हुआ था । केशवचन्द्र और राममोहन के लिये यह न हुआ हो पर उन के शिष्यों के लिये तो यही था । देशी विधवा, विदेशी रमणी जहाँ कहीं सुन्दर मिलीं स्वीकार कर ली गयीं ।

मल्लिका—और इसमें उन विधवाओं का नहीं, उन पुरुषों का उद्धार हुआ जिन्हें यह काम अब लुक-छिप कर नहीं खुले आम डंके की चोट, सुधार के नाम पर करना था।

हरिश्चन्द्र—पर माधवी की ओर मैं खिंचा था बिना देखे । मेरा हृदय कहता था यह मेरे पहल जन्म की सखी है । रामकटोरा बाग से इसके बाप की पड़ोसिन अधेड़ देवकली को भेजकर मैंने इसे कहलाया था अपने को बचायेगी ।

माधवी—वही तो कर्ज लेने के बहाने मुझे वहाँ तक ले गयी । पाँच सौ कर्ज से मेरा क्या होता । गोकुल बाबू ने कागज पर सही कराया और किसी ने मन पर सही करा लिया ।

हरिश्चन्द्र—अपने बिछाये जाल में फँस गया मैं ; और अब जीना है जब तक पुरुष की तरह उसका भार ढोना है।

माधवी—एक बात पूछूँ... [विनय से उनकी ओर देखकर]

हरिश्चन्द्र—हाँ ... तुम से कुछ छिपाता नहीं ... किसी से भी अब कुछ छिपाना नहीं चाहता मैं ... पाप की परिभाषा मेरे लिय केवल छिपाना है।

माधवी—और इनको कैसे ले आये ?

हरिश्चन्द्र—बंगाली कवि हेमचन्द्र बनर्जी के यहाँ बंकिम के साथ यह आई थी। धारावाह बंगाली शब्द जब इसके मुंह से रंग-बिरंगे फूलों की तरह निकलते थे मैं विवश होकर इसकी ओर देखता रहा ...

माधवी—तब क्या हुआ ...?

हरिश्चन्द्र—मल्लिका तुम्हें सब बता देगी, काशीवास के लिये इसने बंकिम से कहा और वे कह बैठे मैं इसे साथ ही लेता जाऊं। अपने साथ लाना तो मुझसे न हो सका पर पंडित रामेश्वरदत्त से इसे साथ लेते आने को मैं कह आया था। यहाँ प्रयागदत्त ने मेरे मकान के सामने ही पहले से ही इसके रहने का प्रबन्ध कर दिया था। दो दिन प्रयागदत्त के घर रहकर यह उस मकान में आ गयी और उसके बाद अब मेरी लेखनी की प्रेरणा बन गयी है।

माधवी—सुन चुकी हूँ। सबेरे पलंग से उठकर पहले इनका दर्शन होता है।

हरिश्चन्द्र—हाँ अपनी सरस्वती का दर्शन मैं पहले करता हूँ। तुम्हें इसकी डाह हो तो कहो बदल दूँ मैं अपनी राह अब से भी, पर तब फिर कुछ लिख न सकूँगा।

माधवी—[हँसकर] जिसके भगवान की तीन सौ साठ सखियाँ थीं उसकी यदि तीन रहें तो उसमें डाह मुझे क्यों हो ?

हरिश्चन्द्र—झूठ बोल रही है।

माध ी—[मुस्कराकर] वहाँ ...

हरिश्चन्द्र—बंगाली होमियोपैथ का पत्र तुम दोनों को सुना चका हूँ।

मल्लिका—उत्तर बंगला शब्दों में मुझे लिखना पड़ा था।

माधवी—एँ ...

मलि लका—क्या करूँ बहन! स्वामी की आज्ञा जो थी बंगाली में शब्द मेरे थे। नागरी अक्षरों में इन्होंने लिख दिया था।

हरिश्चन्द्र—तुम्हें यह विश्वास हो कि मैं तुमसे कुछ छिपाता हूँ तब तो फिर यमराज मुझे ले चलें। जिसके प्रेम में अचेत होकर मैंने सब कुछ छोड़ दिया उसका विश्वास भी न रख सका। [ऊपर देखने लगते हैं]

माधवी—[उनके पैरों पर सिर रख कर] स्त्री का हृदय ब्रह्मा ने सन्देह से बनाया था। इसमें दोष मेरा नहीं उस बनाने वाले का है।

हरिश्चन्द्र—हा...हा...हा...हा...उठो रहने दो यह अभिनय...[**दोनों हाथों में उसका सिर पकड़कर**] तुम जानती हो विद्या की माँ मेरे घर की लक्ष्मी है। मेरा हृदय उसमें नहीं रम सका। बंगाली डाक्टर ने मुझे लिखा मेरी चिन्ता में वह बीमार हैं। मैंने स्वीकार कर लिया मेरा हृदय मेरे वश म नहीं है नहीं तो आदर में, मान प्रतिष्ठा में, उसके कमी नहीं है।

माधवी—तब केवल दो सखियाँ हैं मैं और मल्लिका।

हरिश्चन्द्र—हाँ...

माधवी—काश्मीर चलें कभी...एक वहाँ ढूँढ लें, तीन तो होनी ही चाहिये।

[**दोनों हँसती हैं**]

हरिश्चन्द्र—फिर रोना मत...

माधवी—जितना अचेत मैंने किया दूसरी अब क्या करेगी? क्यों मल्लिका! ठीक कहा?

मल्लिका—अचेत करने का ढंग तो मुझे नहीं आया। मैं तो अपने ही अचेत होती गयी।

हरिश्चन्द्र—'राधारानी' के समर्पण में...

मल्लिका—कविताओं में भी मैं प्रिय के चरणों में अचेत हूँ।

[**बाहर पैरों की ध्वनि—सब उठकर आगे बढ़ते हैं, प्रयागदत्त के साथ गोस्वामी राधाचरण का प्रवेश। प्रायः २३ वर्ष की अवस्था, मूंछ-दाढ़ी के रेशमी बाल बढ़ रहे हैं, लम्बे बाल कन्धे पर फैले हैं, ललाट पर श्री-तिलक, रेशमी**

अचकन, सिर पर जड़ाऊ मखमली टोपी । हरिश्चन्द्र आगे बढ़कर पैरों में झुकते हैं । माधवी और मल्लिका भी झुककर प्रणाम करती हैं ।]

राधाचरण—[दोनों हाथ उठाकर] चिरंजीव...

हरिश्चन्द्र—महाराज ! आप को बड़ा कष्ट हुआ...

राधाचरण—गोपाल ! गोपाल ! यहाँ आने में कष्ट कैसा ? अभिसार के मार्ग का कष्ट अभिसारिका को नहीं होता ।

मल्लिका—[मुस्कराकर] अभिसार के मार्ग में...!

राधाचरण—सुखी रहो भगवती !...बिना स्त्री के अभिसार का सुख कौन जाने ? मैं आज अभिसार पर तो निकला ही हूं । उतनी ही बैचेनी, वही अधीरता...रात को छिपकर पीछे की खिड़की से बाहर निकला हूँ, हर समय डर बना है कहीं पिता जी जग जायँ और पुकार बैठें, 'लल्ला कितै गयो' तब क्या होगा ? [**दोनों हँसती हैं**]

हरिश्चन्द्र—तब आप केवल हम पतितों को दर्शन देने आये । यहाँ थोड़ा भी नहीं रुकेंगे ?

राधाचरण—उनकी पहली नींद एक पहर की होती है । कई रात जागकर मैं इस तथ्य पर पहुँचा हूँ...यहाँ एक घड़ी रह सकूँगा ।

हरिश्चन्द्र—तब आसन ग्रहण करें, यह पलंग मेरी सखी माधवी का है । इसमें आपको आपत्ति हो तो यहाँ नीचे मृगचर्म डाल दूँ ।

राधाचरण—भारतेन्दु जी आप गोपाल के सच्चे भक्त हैं, आपके व्यवहार की हर वस्तु मेरे लिये पवित्र है। मैं इसी पलंग पर बैठ जाऊँगा। पहले आप बैठें।

हरिश्चन्द्र—माधव सम्प्रदाय के गुरु पुत्र आप आज हैं, कल आप ही गुरु होंगे और कितनों के कान में मंत्र देंगे। मैं जन्म से वैश्य हूँ आप के बराबर बैठने का अधिकार तो मुझे यों भी नहीं है। आप केवल ब्राह्मण नहीं प्रधान वैष्णव शाखा के गुरु भी हैं। आपके पैरों के नीचे बैठने में ही आज हम पापियों का कल्याण है।

राधाचरण—[हँसकर] तब कहें लोक व्यवहार में आप भी बँध रहे हैं, जो अब तक उसे तोड़ते आये। पिता से छिपकर मैं आपके पास आया हूँ कुछ सीखने !

हरिश्चन्द्र—जी कुछ विद्यायें ऐसी भी हैं जिनके गुरु को ऊंचा आसन नहीं मिलता।

[**राधाचरण और माधवी हँस पड़ते हैं।**]

राधाचरण—तब आप कहाँ बैठेंगे ?

हरिश्चन्द्र—यहीं नीचे। यह माधवी है। यही जगतगंज की कुलीन क्षत्रिय कन्या। नौ साल में ही यह विधवा हुई, सोलह लगते लगते पिता का कठोर शासन न सह सकी, इसके भीतर प्रकृति की हिलोर थी...पिता ने समझा यह कलंकिनी है।

राधाचरण—सुन चुका हूँ मैं, यवनों के चंगुल से आप इसे निकाल

लाये और इसे अपना कर आपने इस मुर्दे समाज में नया प्राण फूँका ? और वह बंगाली विधवा ।

हरिश्चन्द्र—वही यह मल्लिका है...

राधाचरण—इनका नाम तो दूसरा सुना था...[**पलंग पर बैठते हैं**]

हरिश्चन्द्र—बैठो तुम दोनों। [**हरिश्चन्द्र के दोनों ओर वे नीचे बैठती हैं**] इसके चन्द्रिका को मैंने मल्लिका कर दिया। इसका पहला नाम किशोरी था, दूसरा मुसलमानी नाम पड़ा, तीसरा मैंने दिया माधवी।

राधाचरण—स्त्री का नाम किसी लता का हो आपको यही रुचता है ।

हरिश्चन्द्र—जी...लता जैसे पेड़ को घेर लेती है...उसी तरह स्त्री भी पुरुष को घेर लेती है ।

राधाचरण—मैंने सुना है घर की सम्पत्ति आप सभी छोड़ चुके हैं... और हाँ, यहाँ महाराज से आपने क्या कहा था ?

हरिश्चन्द्र—मेरे हितैषी महाराज को सिखला आये कि मैं बाप दादों का धन फूँक रहा हूँ। बुरों की संगति में पड़ गया हूँ। विलास में अन्धा हो गया हूँ। महाराज ने बड़े प्यार से मुझसे कहा घर की दशा देखकर चलो। कितने कष्ट से पूर्वजों ने धन कमाया। [**गंभीर होकर सोचने लगते हैं**]

राधाचरण—तब ...!

हरिश्चन्द्र—मुझे याद पड़ गया मेरे कुल के इस धन में देश-द्रोह की लपट थी। ब्राह्मण के पैर की शपथ लेकर मेरे पर-

दादा ने जो फिरंगियों को यहाँ सिराज के क्रोध से बचाया और उसके विरुद्ध जो उनकी मदद करते रहे। [**स्वर भारी हो उठता है**]

राधाचरण—यह होनी थी, उनका दोष नहीं...

हरिश्चन्द्र—तो फिर उस धन के खर्च करने में मेरा क्या दोष है। कह दिया मैंने महाराज से यह धन मेरे पूर्वजों को खा गया, इसे मैं खा रहा हूँ और जो बातें यहाँ उड़ाई गईं सब सच नहीं थीं। लखनऊ की नवाबी टूटने पर तेल-इत्र वाले, चित्रकार सभी के पंख टूट गये। कभी कोई सामान लेकर आया मैंने ले लिया, कहने को लोग मुझे लम्पट कह लें ...

राधाचरण—गोपाल! गोपाल! कौन कहेगा? आप के नाटक, आपके पद आपके हृदय के प्रतिबिम्ब हैं। आप प्रेमी हैं लम्पट नहीं। यहाँ के रईस रंडियों के घरों से बेहोशी में उतारे जाते हैं, आप के लिये यह कभी नहीं सुना गया। आप का शत्रु भी यह नहीं कहेगा।

हरिश्चन्द्र—मैं कभी वहाँ गया नहीं। यों कहीं किसी मन्दिर में, तिलक विवाह में नाच देख लिया हो, पुरस्कार भी दे दिया हो ... यह बात दूसरी है। आपके पिता जी मुझे क्या कहते हैं?

राधाचरण—छोड़िये उनकी बात ... वह तो आपके नाम से कान मूंद लेते हैं। बड़ी गर्मी है।

[**माधवी उठकर पंखा झलने लगती है**]

हरिश्चन्द्र—वह चँवर ले ले मल्लिका !

[मल्लिका चँवर डुलाती है]

राधाचरण—बन्दूक जो नहीं कह सकता। जो इसे यवन-शब्द समझता है।

हरिश्चन्द्र—कहते क्या हैं महाराज जी... [**मुस्कराते रहते हैं**]

राधाचरण—[हँसकर] "काहू ने लौह नलिका में श्यामचूर्ण भरिकै अग्नि संस्कार कर दयो तौ भड़ाम सों शब्द भयो"।

[माधवी और मल्लिका खिल-खिला कर हँस पड़ती हैं]

हरिश्चन्द्र—हैं... हैं... किसके सामने हँसी आती है ?

राधाचरण—कृष्ण की गोपियाँ उद्धव के सामने हँस रही हैं और क्या ?

हरिश्चन्द्र—तब आप भी इन दोनों का साहस बढ़ा रहे हैं।

राधाचरण—काशी में शंकर के बाद सबसे साहसी पुरुष के साथ रहकर इनका साहस नहीं बढ़ा क्या ? मैं इनका साहस बढ़ाऊंगा। आप भी क्या कहने लगते हैं ?

हरिश्चन्द्र—प्रेमघन ने आज आने को लिखा था, प्रयाग ! कोठी से लौट आओ, आये हों तो भोजन करा कर यहीं लिवा लाना।

प्रयागदत्त—गणेश को भी लेता आऊंगा।

हरिश्चन्द्र—इसमें भी पूछना है, महाराज से आशीर्वाद मिलेगा उसे ; भगवान खोजने से नहीं मिलते। जब उनकी कृपा होती है देख लो अपने ही आ जाते हैं।

राधाचरण—प्रेमघन से कह देना उनकी आनन्द-कादम्बिनी का एक नया मोर यहाँ आया है। [**प्रयागदत्त का हाथ जोड़ कर प्रस्थान**] आपके पास हाथी दाँत पर चित्रों का उत्तम संग्रह है ?

हरिश्चन्द्र—जी लखनऊ के नवाब का एक दरबारी मुझे बेच गया।

राधाचरण—यहाँ तो न होगा ?

हरिश्चन्द्र—यहीं है पर इस मद्धिम उजाले में ठीक से देख न सकेंगे। माधवी! उठा लाओ अलबम ...

माधवी—महाराज की क्या सेवा की जायेगी ?

हरिश्चन्द्र—यहाँ जल तो आप लेंगे नहीं, इत्र लेती आओ ...

राधाचरण—क्यों ? मैं जल भी लूँगा।

हरिश्चन्द्र—श्री तिलक की मर्यादा भी मैं ही मिटाऊँ। माधवी नित्य गंगा स्नान कर चाँदी की सुराही में जल ले आती है।

राधाचरण—वाह! तब क्या कहना है। जल लेती आना माधवी !

माधवी—थोड़ी फलहारी भी ...

राधाचरण—इतनी रात गये मैं कुछ खाता नहीं ... बस जल ले आओ।

मल्लिका—नारद उर्वशी के हाथ का सोमरस भी लेते थे।

राधाचरण—इसीलिये तो ... फिर तुम उस जन्म की उर्वशी हो या ...

हरिश्चन्द्र—लोपामुद्रा ...

राधाचरण—और अब भारतेन्दु की रोहिणी बनी हो। इन दोनों

के साथ आपका पूर्वजन्म का भी सम्बन्ध है। मेरा मन कह रहा है।

हरिश्चन्द्र—माधवी को जब मैंने पहले पहल देखा मेरे मन में दुष्यन्त की बात आ गयी।

राधाचरण—शकुन्तला को देखते ही उसने जो कहा था "सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः।"

हरिश्चन्द्र—जी ... और इस मल्लिका को देखकर मेरी वही गति हुई जो लोपामुद्रा को देखकर अगस्त्य की हुई थी। उसके तो रूप से मैं खिंचा था पर इसकी वाणी से।

राधाचरण—सब संयोग है होनी होकर रहती है, इसमें तर्क वितर्क करना अज्ञान है।

हरिश्चन्द्र—[बाँह उठाकर] जब मैं वहाँ जाऊँगा...यमलोक के निवासी कौतुक से देखेंगे मुझे ... यही हरिश्चन्द्र है ? मेरी बातें तो वहाँ अब-तब पहुँच गयी होंगी।

मल्लिका—चित्रगुप्त की बही के कई पन्ने रँग गये होंगे।

राधाचरण—धर्मराज भी वहाँ गये थे...वहाँ न जाना ही विस्मय है, विश्वामित्र, पराशर सबको वहाँ जाना पड़ा होगा... जो उद्धार भी पाप हो...

हरिश्चन्द्र—नहीं यह नहीं है महाराज! इन दोनों के द्वारा मैंने अपना उद्धार किया है।

माधवी—[चाँदी के गिलास में जल, चित्रों के अलबम पर इत्रदान लेकर प्रवेश करती है। मल्लिका गिलास लेकर राधाचरण

को देती है, वे धीरे धीरे पीने लगते हैं] नित्य गंगाजल लाने का फल आज मिल गया।

राधाचरण—[चित्रों का अलबम देखते हुये] वाह ! हाथी दाँत पर रंग कैसे निखर रहे हैं [**चित्रों को उलटते हुए**] सभी एक ही नाप के हैं।

हरिश्चन्द्र—सरकार साथ लेते जायँ देखकर भेज देंगे।

राधाचरण—कहीं पिताजी देख लें तो सिर धुन लेंगे।

हरिश्चन्द्र—कहीं जाग गये हों ?

राधाचरण—कह दूँगा शौच गया था। बहुत बातें, पूछनी थीं। यहाँ सब भूल गया, हाँ पैसे की तंगी आ गयी है तो महाराजा के यहाँ रामनगर ही रहते या हिन्दूपति महाराणा...

हरिश्चन्द्र—आकाश में उड़नेवाला पखेरू पिंजड़े में नहीं रहता। महाराज बनारस मुझे पुत्र से कम नहीं मानते, महाराणा उदयपुर ने लिखा था इस राज्य को आप अपनी सीर समझें। इन दोनों को कहाँ छोड़ूँ? मित्रों और प्रेमियों की सेना किसके हवाले करूँ ? जीवन के सभी दृश्य हो चुके हैं अन्तिम दृश्य शेष है। अपने समय पर वह भी हो जायेगा, चिन्ता करने को बहुत है और कुछ भी नहीं।

राधाचरण—तो यह सच है कि अपने हिस्से का सारा धन आपने खर्च डाला ?

हरिश्चन्द्र—[खेद की हँसी] गोकुल मुझसे कुल पंद्रह महीने छोटा है, उसके बालिग होने तक प्रबन्ध नृसिंह राय और मेरी

विमाता के हाथ में था। बालिग होने के तीन महीनेके भीतर ही उसने बँटवारा कर लिया, तीन महीने के भीतर सोना खाकर और पहन कर भी कितना खर्च कर डालता? सोच लीजिये आप।

राधाचरण—तब आपने इस पर आपत्ति क्यों नहीं की?

हरिश्चन्द्र—सगे भाई से, विमाता से बैर करना मुझसे न हो सका, वे लोग जिस में सुखी रहें मुझे भी उसी में सुख है, और फिर पैसे की तंगी मैं लिखा कर आया हूँ, कुबेर का भंडार भी मेरे लिये पूरा न पड़ता, सरस्वती के भक्त पर लक्ष्मी का शाप जो है इसे क्यों भूलते हैं, आप।

राधाचरण—सरकार के कोप का क्या कारण है?

हरिश्चन्द्र—राजा शिवप्रसाद हिन्दी को उर्दू के साथ बाँध कर रखना चाहते थे, 'कवि-वचन-सुधा' में वह जो, 'लेवी प्राण लेवी' वाला लेख छप गया उसके अर्घ्य-पाद्य का अर्थ यारों ने लगाया कि सरकारी अफसरों पर पद प्रहार के लिये लिखा था!

राधाचरण—यह तो गुरुजनों के लिये कहा जाता है।

हरिश्चन्द्र—पर इस सरकार के वाहन अब किसी को हँसने न देंगे। हँसी में कही गयी बात को वे तोप का गोला बना देंगे। सरकार मेरी पुस्तकों, पत्रों की सौ-सौ प्रतियाँ लेती थी, उधर से खरीद बन्द हुई तो जनता खरीदने लगी।

राधाचरण—'कवि-वचन-सुधा' के परिहास के लिये कलकत्ते में लोग टकटकी लगाये रहते हैं, इधर की तो कोई बात नहीं।

हरिश्चन्द्र—वह जो मर्सिया निकला था उसे सर विलियम म्योर पर घटाया गया।

राधाचरण—और 'भुतही इमली का कनकौवा...'

हरिश्चन्द्र—राजा सितारे हिन्द पर लक्ष्य कर वह लिखा गया था। उसका उत्तर वैसी ही चुटकियों में दिया जाना था... पर वहाँ छोटे लाट के कान भरे गये।

राधाचरण—इसमें राजा शिव प्रसाद का भी कुछ हाथ था ?

हरिश्चन्द्र—कुछ नहीं सब। सरकार की शनिदृष्टि से मैं नहीं डरता। जनता की कृपा जो मुझ पर ऐसी ही रही।

राधाचरण—सरकार बहुत करेगी हिन्द का सितारा बना देगी पर भारतेन्दु बनाने की शक्ति जनता के हाथ में है। सितारा न बनकर आप इन्दु बन गये और क्या चाहिये?

हरिश्चन्द्र—महाराज ! मल्लिका तभी से इत्र लिये खड़ी है।

राधाचरण—इत्र की गन्ध वहाँ कहाँ छिपाऊँगा ? "लल्ला कितै लगायौ" क्या कहूँगा ? सोच लीजिये [हँसते हैं]

माधवी—महाराज ! ऐसे डरने से तो आप को डिबिया में बन्द रखते।

राधाचरण—अच्छी बात...पर बाल में नहीं। मैं आँख मूँद लेता हूँ तुम दोनों लगा दो, जो आयेगी देखी जायगी।

मल्लिका—ओहो ! महाराज वही साहस कर रहे हैं जो अर्जुन ने द्रोण के सामने किया था।

राधाचरण—[हँसकर] रनिवासों में तुम दोनों सी देवियाँ नहीं मिलीं।

माधवी—तब सरकार रनिवास भी देख आये हैं ?

राधाचरण—तेरह रानियों को मन्त्र जो दिया है।

माधवी—तब हम दोनों को भी दे दें।

राधाचरण—तुम दोनों को मन्त्र ? भारतेन्दु से बड़ा गुरु मैं नहीं हूँ।

मल्लिका—चरणोदक देने में तो आप को आपत्ति न होगी ?

राधाचरण—[हरिश्चन्द्र की ओर देखकर] बाबू साहब ! यह मेरी परीक्षा ले रहे हैं ? आप...

हरिश्चन्द्र—जी नहीं, मैं झूठ नहीं बोलता। मैंने नहीं कहा इन दोनों से; फिर भी रानी बनना इनके भाग्य में तो था नहीं। आप की दया...सूर्य किरणों की तरह जो पहाड़ की चोटी से लेकर खाई-खन्दक में भी पड़े तो इनका भाग्य खुल जाय।

राधाचरण—आप कहते हैं इन्हें मन्त्र देने को ?

हरिश्चन्द्र—जी, मेरी इन गोपियों को गोपाल का मन्त्र दे दीजिये। और मुझे भी...

राधाचरण—आपने अब तक मन्त्र नहीं लिया है ?

हरिश्चन्द्र—नहीं...घरवालों से बैर इसी से बढ़ा था कि पुरी यात्रा के पहले मैंने मन्त्र नहीं लिया। कहते हैं लोग मेरी वह यात्रा निष्फल गयी। जिसने सारा जीवन निष्फल जाने दिया एक यात्रा की चिन्ता वह क्या करता ? माधवी

ने जब यह कह दिया उसके मुँह का प्रकाश मैंने देख लिया, दीक्षा के विचार में कमल सी खिल उठी वह ।

राधाचरण—पर इसका अधिकार भी है मुझे ?...जो विद्या में बुद्धि में, वय में मुझसे बड़ा है...

हरिश्चन्द्र—[हँसकर] आप व्यक्ति नहीं हैं ! आचार्य रामानुज की विजय पताका के अधिकारी हैं... ।

राधाचरण—अच्छी बात, किसी दिन लग्न देखकर...

हरिश्चन्द्र—मेरा कोई भी कार्य लग्न देखकर नहीं हुआ...मन में जब जो लहर आयी मैं उसी में डूबता रहा, आज इसी लहर में डूबने दीजिये । [**स्वर भारी हो उठता है राधाचरण उठकर हरिश्चन्द्र को भावावेश में पकड़ते हैं.... हरिश्चन्द्र उनके पैरों पर गिरकर रोने लगते हैं....माधवी और मल्लिका भी सिसकने लगती है। प्रेमघन, प्रयागदत्त और नौ वर्ष का बालक गणेश प्रवेश कर ठिठक कर खड़े होते हैं।**]

प्रेमघन— प्राय: २५ वर्ष के लम्बे बालों वाला तरुण, आनन्द और विस्मय की लहरों में डूबा, भरे कंठ से] आनन्द कादम्बिनी इन्द्रलोक से उतर कर यहाँ आ गयी ?

राधाचरण—प्रेमघन ! क्या कहा ?

प्रेमघन—प्रणाम भगवन् ! मैं सोचता था आनन्द कादम्बिनी इन्द्रलोक में बरसती हैं पर वह तो यहीं है ।

गणेश—[मल्लिका को पकड़कर] ऊँ ... रो रही हो !

हरिश्चन्द्र—प्रेमघन ! सन्देह का पर्वत आज ढह गया । हम तीन पापी माधव-सम्प्रदाय के राजगुरु गोस्वामी जी से दीक्षा लेंगे ।

प्रेमघन—जय हो ! भक्त के घर भगवान् जो आ गये ।

[पर्दा गिरता है ।]

दूसरा अंक

[दूसरे दिन दो घड़ी दिन चढ़ा है। भारतेन्दु का घर। दीवानखाने से सटा कमरा। दीवालों के किनारे आलमारियाँ लगी हैं, जिनमें पुस्तकें, औषधियों के बर्तन, सुन्दर शीशी, बोतल हैं। दीवालों पर चित्र। दीवानखाने में नीचे प्रायः आधा भाग चौकियों से घिरा है, जिनकी ऊँचाई एक होने से एक ही चौकी सी देख पड़ती है। चौकी पर रंगीन कालीन और कई मसनद, तीन चार पुस्तकें, कुछ मासिक, साप्ताहिक पत्र, चाँदी की थाली में पान का डिब्बा और इत्रदान रक्खे हैं। नीचे भी कालीन पर तबला, सितार और दूसरे बाजे हैं। भीतर की ओर से हरिश्चन्द्र का प्रवेश। आकृति से थकान के चिह्न दीख पड़ते हैं। लम्बे बाल कन्धे पर छितरा रहे हैं। आँखें लाल हो रही हैं। रह-रह कर सूखी खाँसी आती है। बनारसी लाल अँगौछा कमर में और रेशमी आधे बाँह की बण्डी पहने हैं। खिड़की से बाहर गली की ओर देखते हैं। हाथ से आँखें मलते हैं, फिर सिर हिला कर जैसे सजग होते हैं। चौकी के आगे आकर नीचे बैठते हैं और तबला पकड़ कर धीरे-धीरे ठेका देते हैं।]

नेपथ्य में—बोलते नहीं। किसने मोमबत्ती रख दिया यहाँ? सौ रुपये का शीशा टूटा है। तुम तीनों के हाड़ से वसूल करूँगा यह रुपया। समझ रहे हो?

हरिश्चन्द्र—बच्चा....[**किसी चिन्ता में पड़ जाते हैं**]

राधाकृष्णदास—[प्रवेश कर] भैया ! बुलाया आपने ?

हरिश्चन्द्र—अरे हाँ...किस पर बिगड़ रहे हैं ।

राधाकृष्णदास—कौन...

हरिश्चन्द्र—सुन नहीं रहे हो कौन ?

राधाकृष्णदास—[दूसरे कमरे की ओर देखकर] दीवानखाने में कार्निस के ऊपर का शीशा टूट गया है ।

हरिश्चन्द्र—हूँ, किसी ने तोड़ दिया ?

राधाकृष्णदास—आप ही ने तो छोटे भैया को बताया था, किसी ने यहाँ मोमबत्ती रख दी, इससे चिटक गया ।

हरिश्चन्द्र—परसों की बात है यह । अभी तक यह मामला चल रहा है ।

राधाकृष्णदास—पूछ रहे हैं, जिस नौकर ने रखा हो, बताइये । नहीं तो सब को अलग करेंगे । डाँड़ लेंगे उसकी कीमत ।

हरिश्चन्द्र—नौकरों को सताने से क्या होगा ? संयोग था, टूट गया । आदमी से भूल होती है, किसी ने जानबूझ कर शीशा तोड़ने के लिए मोमबत्ती तो वहाँ जलाया न होगा ।

राधाकृष्णदास—बड़े हरामी होते हैं ये नौकर । तोड़ने फोड़ने में ही लगे रहते हैं, कह रहे हैं छोटे भैया, यह सब चाहते हैं, सब घर बराबर हो जाय । किसी घर में कोई बढ़िया चीज न रहे । जैसे इनके घर हैं, वैसे ही सब के हो जायँ ।

हरिश्चन्द्र—[हँस कर] पश्चिम के देशों में सब घर बराबर करने की बात चल रही है। यहाँ भी वह हवा चलेगी, हम जब उन्हें सन्देह की आँख से देखेंगे, उन्हें भी यही करने का मौका देंगे।

[**नेपथ्य में**]—काठ के पुतले बने हो बदमाश! जीभ सिल गयी है। सब झूठ बोल रहे हैं, परलोक से भी नहीं डरते।

हरिश्चन्द्र—सुन रहे हो, परलोक की बात उनसे कही जा रही है, जो पेट की चिन्ता से आगे नहीं बढ़ते। गोकुल भी रहता है, सनक जाता है। बिना क्रोध-मोह छोड़े परलोक का नाम क्यों लेता है? देखता हूँ बिना गये न बनेगा... किसी पर हाथ न छोड़ दे। [**आगे बढ़ते हैं**]

राधाकृष्णदास—भैया आप न जाइये। बिगड़ पड़ेंगे आप पर भी।

हरिश्चन्द्र—तो क्या होगा? भाई भाई पर बिगड़ता ही है, इसमें मेरी हेठी नहीं होगी।

राधाकृष्णदास—उनसे बोलने का मन आपका कैसे करता है?

हरिश्चन्द्र—क्या कह रहे हो।

राधाकृष्णदास—तब आप इस कलियुग के नहीं हैं।

हरिश्चन्द्र—साफ़ कहो, तुम्हारा मतलब क्या है? सभी युग में भाई थे—कोई बन गया, तो कहीं महाभारत मचा।

राधाकृष्णदास—भण्डार का ताला पकड़कर जब वे बैठ गये, तभी आपको उनसे बोलना बन्द कर देना चाहिए था।

हरिश्चन्द्र—नहीं, उसका हाथ पकड़ कर खींच लेना चाहिए था।

ताला खोलकर रुपया निकाल लेना चाहिए था। तीन महीने में अपने भाग का सारा रुपया मैंने खर्च नहीं कर डाला था। सही तो यह है कि सात लाख की पूंजी में सात हजार भी मैंने खर्च नहीं किया था। पर जब छोटा भाई विरोध में खड़ा हुआ, तब या तो मैं उससे लड़ता या उससे हार मान कर उसे आशीर्वाद देता। मैंने यही दूसरा काम किया, जो सब से नहीं होता। लड़ने वाले मिलेंगे पर....

राधाकृष्णदास—आप बड़े भाई थे ?

हरिश्चन्द्र—इसीलिये मेरी क्षमा भी बड़ी थी। तुम अभी लड़के हो। राग-द्वेष में पड़ने से सुख नहीं मिलता।

[नेपथ्य में]—दुहाई सरकार की, मैंने नहीं रखा...

हरिश्चन्द्र—[वेग से भीतर जाकर] यह क्या कर रहे हो गोकुल ? संसार में सब कुछ नाशवान् है। हम तुम नहीं रहेंगे। उस शीशे की क्या बात है। जो एक दिन बनता है किसी दिन बिगड़ भी जाता है। इन छोटी बातों में मन को मत बिगड़ने दो।

गोकुलचन्द्र—इसी से यह सब और सिर चढ़ रहे हैं। अब आप मेरे बीच में न पड़ा करें। सब नाशवान् है तो घर-बार रह कर क्या करेगा। ढाह दीजिये सब दायें बायें।

हरिश्चन्द्र—और सब ढहाने का दोष मुझे दे लो...पर दया और धर्म में नहीं गिराता। तुम मालिक हो। इनकी बुराई

तुम नहीं माफ करोगे तो कौन करेगा ? मुझे जिस करवट चाहे करो, पर अपने नौकरों की आँखों में नीचे न उतरो ।

गोकुलचन्द्र—देख लीजिये आप। कितना बड़ा नुकसान हो गया ?

हरिश्चन्द्र—जैसे तुम्हारे पूर्वजों ने इससे बड़ी हानि नहीं उठायी है । बड़े साम्राज्य इसी धरती पर खड़े होकर गिर नहीं पड़े ? यह सब भगवान् का खेल है बाबू ! आज का राजा कल का रंक है और कल का रंक आज का राजा। यह धरती सब को खा गयी...इसका खाने वाला नहीं सुना गया । चलो तुम सब जाओ यहाँ से, अपना काम करो । हाथ-पैर सम्हाल कर चला करो । बेढंग चलोगे तो मालिक बिगड़ेंगे ही ।

गोकुलचन्द्र—आपकी तबियत उतरी है ।

हरिश्चन्द्र—दिये का तेल जल चुका है गोकुल । यह लौ अब न चलेगी । मैं भी मनुष्य था, सभी विकार लेकर पैदा हुआ था । भूल-चूक क्षमा करना ।

गोकुलचन्द्र—कई दिनों से सोच रहा था आपसे कुछ कहने को ।

हरिश्चन्द्र—चले आओ । चाहे जितना बुरा मैं होऊँ, पर भाई का प्रेम मेरे मन में अन्त तक रहेगा ।

[राधाकृष्णदास कान लगा कर सुनते हैं। प्रायः १६ वर्ष के युवक राधाकृष्णदास कुर्त्ता धोती पहने हैं । आँखों में चमक है। गोकुलचन्द्र और हरिश्चन्द्र का प्रवेश ।]

हरिश्चन्द्र—आओ बैठें। राधाकृष्ण प्रयागदत्त को बुलाना।

[**राधाकृष्ण का प्रस्थान**]

गोकुलचन्द्र—तो आप उदयपुर जायँगे।

हरिश्चन्द्र—हिन्दूपति महाराणा सज्जनसिंह का पत्र तुम देख चुके हो। जिस किसी बहाने स्वतन्त्रता की उस तपोभूमि का दर्शन हो, भाग्य की बात है।

गोकुलचन्द्र—खाँसी अभी आप की नहीं गयी। कहीं बीच म बीमारी बिगड़े ?

हरिश्चन्द्र—बार-बार कहा थोड़ा साहित्य पढ़ लो। तुम समझते हो साहित्य पागल पढ़ते हैं, जिन्हें घर फूँकना रहता है। साहित्य का सब से बड़ा फल होता है...मृत्यु से निर्भय रहना। जन्म और मृत्यु दोनों की घड़ी पहले से ही तै है और स्थान भी।

गोकुलचन्द्र—साथ कौन कौन जा रहे हैं ?

हरिश्चन्द्र—कोई नौकर रहेगा। एक ब्राह्मण, राधाकृष्णदास और मैं। राधाकृष्णदास को एकलिंग का दर्शन मिलेगा। हल्दी घाटी, नाथद्वारा और उदयपुर की वह सारी भूमि देखने को मिलेगी जहाँ महाराणा प्रताप की तलवार चमकी थी। राधाकृष्ण से कह दिया है, महाराणा प्रताप लिखने को। वहाँ उसे सब सामग्री भी मिल जायेगी।

गोकुलचन्द्र—मन में कुछ शंका हो रही है।

हरिश्चन्द्र—किस बात की ? उस वीर भूमि में मेरा प्राण छूटे इतना बड़ा भाग्य मेरा नहीं है । और फिर कबीर का यह दोहा नहीं जानते ।

गोकुलचन्द्र—कौन सा ?

हरिश्चन्द्र—[मुस्करा कर]

मरनो भलो विदेश को जहाँ न अपनो कोय ।
माटी खायँ जनावरा महा महोच्छव होय ।।

गोकुलचन्द्र—तब मैं नहीं जाने दूँगा...नहीं, कभी नहीं । [**उद्वेग और दुःख की मुद्रा ।**]

हरिश्चन्द्र—जितने दिन यहाँ से दूर रहूँगा, कम से कम उतने दिन तो चैन से सो सकेंगे । आज हरी ने यह किया, कल वह किया...दुनिया भर की बदनामी । जान बची रहेगी तुम्हारी । मेरी आदत जो बिगड़ गयी है, अब बनेगी नहीं । हाँ, पर जो कहीं मेरा कुछ हो जाय तो मल्लिका को सँभालना । मैंने धर्म से उसका हाथ पकड़ा है । माधवी के पास गहने हैं, अपना घर भी है ।

गोकुलचन्द्र—वह घर अब उसका हो गया ?

हरिश्चन्द्र—मेरी इस देह की चिन्ता करते हो, पर [**छाती पर हाथ रख कर**] इस मन की नहीं । माधवी और मल्लिका अब दोनों इस जीवन में मिल गयी हैं, समुद्र के जल म जैसे नमक मिला रहता है । तुम मुझे पापी और कुल-कलंक समझते हो...बुरा होकर भी मैं तुम्हारा भाई हूँ...

मेरी बुराई को भी तुम किसी दिन प्रेम करोगे, जब मैं न रहूँगा। माधवी और मल्लिका दोनों को मैं तुम्हारे धर्म के पीछे छोड़ कर जा रहा हूँ। माधवी जिस मकान में रहती है, उसकी रजिस्टरी मेरे नाम है, पर जब तक वह जिये उसी में रहने देना। बोलो......।

गोकुलचन्द्र—माधवी मेरे वश में न रहेगी। वह अपने को आपकी विवाहिता समझती है। जब कभी सामने पड़ी है, ऐसी आँखों से देखती है जैसे मेरा प्राण पी लेगी। भगवान् न करे वह दिन आये। पर कहीं आया तो माधवी मेरे हाथ जोड़ने पर भी उस घर में न रहेगी। मल्लिका के लिये घर की पूँजी लगा कर चौक में आपने उसके और अपने नाम की दूकान खोल दी है।

हरिश्चन्द्र—किताबें बिकती कहाँ हैं? दूकान का खर्च भी तो उससे नहीं निकलता।

गोकुलचन्द्र—अच्छी बात, दस रुपये मासिक उसे दे दिया जायगा।

हरिश्चन्द्र—बहुत होगा।

गोकुलचन्द्र—रात गोस्वामी राधाचरण उस घर में आये थे?

हरिश्चन्द्र—[सहम कर] हाँ, किसने कहा?

गोकुलचन्द्र—यह न पूछिए। उनके नौकर से सारी बातें मुझे वहीं मालूम हो गयी थीं कि आज रात को बड़े महराज के सो जाने पर वे आपसे मिलने आयेंगे। प्रयागदत्त आपकी कोई बात तो मुझसे कहता नहीं। प्रेमघन बाहरी

आदमी हैं उनसे पूछता नहीं। मैं अपने वहाँ चला गया और गली के मोड़ पर खड़ा हो गया।

हरिश्चन्द्र—मेरी जासूसी तुम अब भी करते हो?

गोकुलचन्द्र—आप चाहें इसे जासूसी कहें...पर मैं केवल कौतूहल में चला गया।

हरिश्चन्द्र—तुम्हारी राह रोक कर मैं कभी खड़ा नहीं हुआ। लोगों के उभाड़ने पर तुमने मेरे विरुद्ध क्या क्या नहीं कहा? भण्डार का ताला पकड़ कर तुम बैठ गये कि अब उसमें जो कुछ था तुम्हारे भाग का था—वहाँ से भी हट आया मैं। पर सब बातों की सीमा होती है। ननिहाल का धन सब तुम्हारे नाम हो गया...?

गोकुलचन्द्र—आपके नाम रह कर बचता नहीं। जो कुछ आपके नाम बटवारे में हो गया, कहाँ है अब वह? झूठे तमस्सुक लिखाने वाले को आपने अदालत के समझाने पर भी पूरा रुपया दिया। नहीं तो सैयद अहमद साहब तुले बैठे थे कि उन बेइमानों को एक पाई अधिक न लेने देंगे।

हरिश्चन्द्र—हा...हा...हा...इसीलिये तो उन्होंने फैसले में लिख दिया...चूँकि अदालत को बाबू हरिश्चन्द्र के बयान में विश्वास है इसलिये किसी दूसरी गवाही की जरूरत नहीं। मैं चला जाऊँगा गोकुल, यह धन तो चला ही गया, पर अदालत की यह लिखी बात कभी नहीं जायेगी।

मेरे यश के शरीर की ओर देखो, वह मरेगा नहीं ।

गोकुलचन्द्र—सन्ध्या समय थोड़ी रात गये आप से मिलूँगा ।

हरिश्चन्द्र—उस समय तो मैं यहाँ रहता नहीं ।

गोकुलचन्द्र—मैं वहीं आ जाऊंगा ?

हरिश्चन्द्र—माधवी के यहाँ ?

गोकुलचन्द्र—हाँ.....

हरिश्चन्द्र—दो भाइयों के मिलने की जगह यह है, पूर्वजों का घर । वह घर तुम्हारी मर्यादा के बाँध में दरार है, वहाँ तुम नहीं जा सकोगे ।

गोकुलचन्द्र—जो हो पर मैं आज वहाँ जाऊँगा ।

हरिश्चन्द्र—तब लोगों ने तुम्हें इसके लिये भी उभाड़ा है ?

गोकुलचन्द्र—यही एक काम मैं अपने मन से करूँगा । और सब लोगों के उभाड़ने पर किया । मेरे मन म आप के लिए आदर और प्रेम है, पर उससे भी अधिक है यहाँ पूर्वजों की प्रतिष्ठा के साथ बसा रहना । बनिया जमा नहीं छूता, कमा कर खाता है । अपने पहरे में बढ़ा न पाये तो घटाना भी न चाहेगा । हम लोग राजा नहीं हैं, समय आने पर एक का तीन लेकर भण्डार नहीं भर सकते । लखनऊ के नवाब की ऐंड़ी हम नहीं मार सकते और न तो महाराज बनारस की उँगली पकड़ सकते हैं ।

हरिश्चन्द्र—गोकुल ! मैं समझता था, तुम अभी लड़के हो ।

गोकुलचन्द्र—आप लड़के जो बने रह गये, हार कर मुझे बुड्ढा बनना पड़ा । आप अपने यश के शरीर में जीते रहेंगे,

पर इस घर की अगली पीढ़ी किस पर जीती रहेगी, यह नहीं सोचते आप !

हरिश्चन्द्र—नहीं सोचता म यह ? तुम लोगों ने मुझे जो दिया सही मान कर ले लिया मैंने ।

गोकुलचन्द्र—यह घर बस इसी का गुणगान करेगा। इस समय जा रहा हूँ मैं रात को वहीं...आप भी अब नहा कर कपड़े बदल लें । आपके दरबार का समय हो गया—अब...[**गोकुलचन्द्र सिर झुका कर जाते हैं । हरिश्चन्द्र भी दूसरी ओर निकल जाते हैं, प्रयागदत्त और राधाकृष्णदास का प्रवेश ।**]

प्रयागदत्त—यहाँ तो कोई नहीं है । खेल करते हो ?

राधाकृष्णदास—मैं दोनों को यहीं छोड़कर गया । कहीं कुछ सुन लूँ इसीलिए बड़े भाई साहब ने मुझे आपको बुलाने के लिए भेजा ।

प्रयागदत्त—ब्राह्मण की शपथ लेकर कहो सच कह रहे हो ।

राधाकृष्णदास—कलियुग के इस वशिष्ठ के सिर पर हाथ रख कर मैं कहता हूँ...सभी देवता साक्षी बनें, इन्द्र, मरुत्, अग्नि सविता कि...[**प्रयाग के सिर पर हाथ रखता है ।**]

प्रयागदत्त—[हाथ झटक कर] चलो हो गया...बड़े सतयुग के बने हो । सतयुग का बनिया बाह्मण के पैर पर हाथ रख कर शपथ लेता था..तुम सिर पर ब्राह्मण के हाथ रख रहे हो ।

राधाकृष्णदास—सिराज के दरबार में इस घर के इक्ष्वाकु अमीनचन्द

ने जब ब्राह्मण के पैर पर हाथ रख कर शपथ ली। तभी से बात बदल गयी । अब ब्राह्मण के सिर पर हाथ रख कर शपथ ली जाती है ।

प्रयागदत्त—तब मैं जा रहा हूँ. . . .कहो मुझे बनाने को लिवा लाये।

राधाकृष्णदास—ब्रह्मा की इस बनावट को मैं क्या बनाऊंगा । पण्डित जी मैं सिद्ध कर दूँगा कि जिस दिन ब्रह्मा ने आपको बनाया होगा उस दिन उनका हाथ थक गया होगा और कोई दूसरी मूरत वे न बना पाये होंगे !

प्रयागदत्त—उस दिन नहीं..... बारह बरस तक तो वे सोते रहे और तब बाबू राधाकृष्णदास को बनाया उन्होंने। मैं भी कहता हूँ, यह कब होगा ? अब वे दोनों भाई कभी बात करेंगे ? धरती, आकाश मिल जायँ, पर वे अब क्या मिलेंगे ?

राधाकृष्णदास—आप समझते हैं, मैं हँसी कर रहा हूँ.... धरती-आसमान अलग कहाँ हैं ?

प्रयागदत्त—तब क्या ... [**खिड़की के बाहर देखकर**] आसमान वहाँ, धरती यहाँ ...

राधाकृष्णदास—[धीमे स्वर में] जी नहीं [**चौकी की ओर संकेत कर**] यहीं दोनों बैठे थे।

प्रयागदत्त—क्या बात करते रहे ... कुछ नहीं जानते ?

राधाकृष्णदास—आप सुन रहे हैं, मुझे उन्होंने आपके बुलाने के बहाने हटा दिया।

प्रयागदत्त—सब कुछ डकार गये ... अब कहते होंगे, किसी से न मिलें-जुलें। संगी साथी सब को छोड़ दें .... बेचारी उन दोनों का मुख न देखें। पर हरिश्चन्द्र ब्रह्मा की टाँकी बन कर जिसे पकड़ते हैं पकड़ लेते हैं।

राधाकृष्णदास—पण्डित जी एक बात पूछूँ ..... मल्लिका को कलकत्ते से भाईसाहब ले आये ?

प्रयागदत्त—राधा बाबू! संसार भर में संग्रह-योग्य वस्तु जहाँ कहीं हो हमारे दयानिधान बाबू हरिश्चन्द्र उसका संग्रह अवश्य करेंगे। इस विषय में पंडित रामेश्वर जी से मैं सब सुन चुका हूँ। बंगाल में विद्वानों की मंडली में स्त्रियाँ भी बैठती हैं। जैसे कभी ऋषियों की मण्डली में लोपामुद्रा, गार्गी बैठती थीं। मल्लिका की विद्या-बुद्धि पर वे रीझ गये—पर स्त्री ... विद्या के बल से जब से यह सृष्टि है, कभी नहीं खड़ी हुई। पुरुष की छाँह में ही वह लता सी फैलती है।

राधाकृष्णदास—आप तो भगवान् की कथा कहने लगते हैं।

प्रयागदत्त—आप भी तो यही चाहते हैं। किस गोपी से कहाँ भेंट हुई ?

राधाकृष्णदास—मैं इतना ही पूछता था, उसे वे साथ लेकर आये?

प्रयागदत्त—नहीं वह रामेश्वर पण्डित के साथ आयी। उसे लिवा लाने के लिये वे उनसे कह आये थे। मुझसे यहाँ जगह ठीक करने को कहा।

राधाकृष्णदास—तब आप भी इस कूटनीति में हैं।

प्रयागदत्त——मैं कब कहता हूँ नहीं।

राधाकृष्णदास——पं० रामेश्वर की जेब में पिछले साल जो उन्होंने दो हजार का नोट डाल दिया, कदाचित् इसकी भी दलाली थी।

प्रयागदत्त——देखो बाबू मुझे जो चाहो, कह लो, वे बेचारे सात्विक ब्राह्मण हैं।

राधाकृष्णदास——सौदा पटान की दलाली ब्राह्मण नहीं लेता? वह व्यवसाय की बात है।

प्रयागदत्त——तो वह औरतों की दलाली करते हैं।

राधाकृष्णदास——यहाँ क्वीन्स कालेज के प्रिन्सिपल प्रमदादास मित्र से कह कर वे भाईसाहब को केवल स्टेशन तक पहुँचाने गये और चले गये साथ ही साथ कलकत्ते। कुछ न कुछ दाल में काला तो था ही।

प्रयागदत्त——पूछ कर तुम्हें बताऊँगा क्या बात थी। कलकत्ते में उन्हें दो दिन में चार सौ पूँजी मिली थी। वह तो तुम्हारे भाईसाहब ने वहीं खर्च कर डाली, यहाँ घर के लिये जो कुछ सामान उन्होंने दिया था, वह भी उनके घर नहीं पहुँचा। ब्राह्मण के धन से वे कितना डरते हैं जानते हो न? दो साल बीतने पर दो हजार का नोट उनकी जेब में डाल कर किसी तरह धर्म के ऋण से वे छूटे। पण्डित जी बेचारे तो घर से लौट आये लौटाने

के लिये ... जब उन्होंने नहीं लिया—और कह दिया कलकत्ते में जो लिया था वही है—तब वे क्या करते ?
[प्रवेश करते हैं, चिकन की दुपलिया कामदार टोपी के नीचे भौंरे से बाल कन्धे तक लटक रहे हैं। रेशमी अचकन और धोती]

प्रेमघन—भारतेन्दु जी अभी नहीं उठे ?

राधाकृष्णदास—उठ गये हैं। नहा धो रहे हैं।

प्रेमघन—हूँ ... देखो तो कितनी देर है।

हरिश्चन्द्र—[दूसरे कमरे से] प्रेमघन जी ...

प्रेमघन—जी ...

हरिश्चन्द्र—चले आओ यहीं। या ठहरो आ रहा हूँ, हम लोग यहाँ जम जायेंगे तो फिर और लोगों को निराश होना पड़ेगा।

[रेशमी चादर ओढ़े प्रवेश]

प्रेमघन—इतना तेज इत्र .... नाक भिन्ना उठी।

हरिश्चन्द्र—[हँसकर] व्यसन की मात्रा नित्य बढ़ती है प्रेमघन! भाँग की मात्रा थोड़ी नित्य न बढ़ती रहे तो सब ओर सूना लगता है। इत्र भी पहले थोड़ा नहीं सहा जाता, पर जब नाक भर जाती है, अच्छी तरह न लगाओ तो गन्ध नहीं मिलती। कलेवा कर लिया बच्चा!

राधाकृष्णदास—अभी नहीं ...

हरिश्चन्द्र—तब कब दोपहर को? मेरी नकल न करना। मुझे अब कुछ दूसरा नहीं होना है और तुम संसार में अभी डग डाल रहे हो। जवानी में पता नहीं चलता, बाद को लोग

पछताते हैं। **[चौकी पर मसनद की टेक लेकर बैठते हैं। पान का डब्बा खोल कर प्रेमघन को देते हैं फिर अपने मुंह में डालते हैं]** जाओ खड़े क्या हो ? बड़ों के कहने पर चला जाता है...उनके करने पर नहीं। **[राधाकृष्ण का मुस्करा कर प्रस्थान]** धर्म भी धन से होता है। **[गा उठते हैं]**

धन ते धरम धरम तें अधरम अकरम करम करे।
दयानिधि तेरी गति लखि ना परे। टे०

प्रेमघन—चिन्तित देख पड़ते हैं आप।

हरिश्चन्द्र—आग कब तक कोई दबा कर रखगा ? कभी न कभी जब हवा चलेगी, वह लहक उठेगी।

प्रेमघन—बात क्या है ?

हरिश्चन्द्र—कोई दक्षिणी ब्राह्मण यहाँ तीन दिन से बराबर आते हैं और बिना कुछ कहे चले जाते है। मैं भी कैसा सूम हूँ.....देने को धन नहीं है तो कम से कम भाव भरे दो शब्द उन्हें दे देता। प्रयागदत्त, आज नहीं आयेंगे क्या ? देखो तो डयोढ़ी पर हैं और कौन-कौन आये हैं ? [**प्रयागदत्त का प्रस्थान**] अब कहो ! सरक आओ और निकट यह मसनद ले लो।

प्रेमघन—[उनके निकट मसनद के सहारे टिक कर] आज की पूजा में माधवी ने स्त्रियों की मण्डली में आरती दिखायी और मल्लिका प्रसाद बाँटती रही।

हरिश्चन्द्र—क्या ? बड़े महाराज नहीं थे ? [**विस्मय की मुद्रा**]

प्रेमघन—पूजा का भार राधाचरण जी पर छोड़कर वे सबेरे ही महाराज के यहाँ रामनगर चले गये। दशाश्वमेध पर महाराज का वह मयूर-पोत आया था।

हरिश्चन्द्र—यह भी संयोग की बात थी।

प्रेमघन—जी नहीं। राधाचरण जी कल दोपहर को यह जान गये थे। तभी रात आपके यहाँ आये और मल्लिका से कह दिया सबेरे की पूजा में आने को।

हरिश्चन्द्र—उन दोनों को साथ ले जाने में तुम झेंपे नहीं?

प्रेमघन—[मुस्कराकर] 'कौन गनै वृषभानुपुरी में।' यहाँ की गलियों में मेरे ऐसे कितने भटकते हैं। कौन जानता है उन्हें। भन्नाटे का इक्का किया। दोनों को पीछे बैठा कर मैं आगे बैठ गया। रास्ते भर 'वाह यार' 'वाह गुरू' की बौछार सहता चला गया।

हरिश्चन्द्र—शंकर ने जो वह कालकूट पी लिया था, उसका प्रभाव उनकी पुरी के जन-जन पर अभी तक बना है। यहाँ सभी मद में रहते हैं। फिर आगे...

प्रेमघन—दस डग तो जाना था। दोनों आगे चलीं, मैं पीछे। फाटक पर कोई लम्बोदर जैसे पहले ही से सब जानता था। मेरा नाम सुन लिया, फिर बड़े आदर से रास्ता दिखाता गया। पूजा की चौकी पर से राधाचरण जी हँसे मेरा नाम लेकर। उन्होंने अपने दायें नीचे बैठने का संकेत किया। माधवी कहीं दबने वाली तो है नहीं। स्त्रियों की चार

पाँत लाँघ कर एकदम ठाकुर जी के सिंहासन के सामने मल्लिका का हाथ पकड़ कर बैठ गयी ।

हरिश्चन्द्र—किसी ने पहचाना नहीं ?

प्रेमघन—स्त्रियाँ घूँघट के भीतर से जो जान जाती हैं...पुरुष पहाड़ की चोटी पर चढ़ कर नहीं जान पाता । घूँघट के भीतर से हाथ निकाल कर, आँख नचा कर, कानाफूसी करती रहीं सब...पर जब ठाकुर जी को पाँच रुपया चढ़ा कर माधवी आरती घुमाने लगी, सब उसके मुँह की ओर अचरज में देखती थीं । माधवी के जोड़ का रूप काश्मीर में मिल जाय, इधर तो कहीं नहीं है ।

हरिश्चन्द्र—मल्लिका के हाथ से प्रसाद लेकर इन बड़े घरों की स्त्रियों का धर्म कहाँ रहा ? यह तो वही कहावत हुई 'बाँड़ आप गये नौ हाथ का पगहा लेते गये' ।

प्रेमघन—मूर्खों का धर्म आप भी मानते हैं । गोस्वामी राधाचरण आप के जाल में पड़ गये तो....उनके धर्म से बड़ा किसका धर्म है यहाँ ?

हरिश्चन्द्र—जब तक जीना है, मन को भुलावा देना है । एक ओर तो उन्होंने राजघरानों में मंत्र दिया, दूसरी ओर इन दोनों को...जिनकी परछाईं पड़ने से भी कुलीनता के बिगड़ जाने का डर है ।

प्रेमघन—सन्ध्या समय नाव पर चलने को उन्होंने कहा है । उन दोनों को भी बुलाया है । मुझे भी......

हरिश्चन्द्र—तब पूरी चाण्डाल चौकड़ी रहेगी, क्यों ?

प्रेमघन—हम लोग चाण्डाल हों, तब तो देवताओं की नयी सृष्टि होगी ? [हँसते हैं]

हरिश्चन्द्र—मुझे क्या समझते हो प्रेमघन !...तुमसे कुछ भी छिपा नहीं है ।

प्रेमघन—नागरी के सुहाग-बिन्दु...स्नेहियों के सखा...याचकों के मेघ....मैं आपको अपना गुरू मानता हूँ । उर्दू की गज़लें लिखने में मेरे दिन बीत गये होते, नागरी की प्रेरणा मुझे आप से मिली । सचमुच उर्दू में गज़लें लिखना या शराब पी कर सो रहना मैं दोनों बराबर मानता हूँ ।

हरिश्चन्द्र—नागरी हमारी मिट्टी का सोना है । आशिक माशूक की 'हाय-हाय' छटपटाहट के आगे, जनता के जीवन के लिए जब साहित्य माँगा जायगा, उर्दू की नाज़ुक कमर उस भार से टूट जायेगी । इन गज़लों से मुझे अब सड़े मांस की गन्ध आने लगी है । दूसरी ओर फिरंगी, हिन्दी उर्दू का झगड़ा खड़ा कर रहे हैं । लखनऊ, दिल्ली की बाजारों और रण्डियों के कोठे की यह भाषा हमारी जनता में उतर रही है । देखना, सावधान रहना । हिन्दी-उर्दू का समझौता विवाहिता स्त्री और रखेलिन का समझौता होगा । इससे घर की दीवारों में दरार पड़ेगी । लोगों के मन में दरार पड़ेगी ।

प्रेमघन—राजा शिवप्रसाद जी नहीं समझ रहे हैं ।

हरिश्चन्द्र—जिस सरकार के अंग हैं, वे, वह सरकार समझ रही

है । हिन्द-मुसलमान को भिड़ाने का सबसे सीधा उपाय धर्म और भाषा है । उर्दू को जनता की बोली बना कर जनता की आत्मा मारी जा रही है । मुसलमान से कहा गया, गाँव-गाँव में गोकशी करो...मुसलमानी राज्य में भी जहाँ गाय का रक्त नहीं बहा, वहाँ बहाया जा रहा है । हिन्दू से कहा जा रहा है, अपने धर्म पर मर मिटो । पूर्व और उत्तर आजमगढ़, गाजीपुर, बलिया में इसी बहकावे में हिन्दुओं ने सिर उठाया । अब वे जेल में बन्द किये जायेंगे ।

प्रेमघन—मुसलमान भी याद करेंगे ।

हरिश्चन्द्र—हाँ, उधर मुसलमानों की हानि होगी, खुले मैदान में मुगलों के समय में भी गायें नहीं मारी गयीं...[**मुख लाल हो उठता है**]

प्रेमघन—अब रुक भी जायेगा यह, हिन्दुओं की सोई वीरता जागेगी ।

[**प्रयागदत्त के साथ किसी दक्षिणी पण्डित का प्रवेश । पण्डित किनारी वाली चादर ओढ़े हैं । साँवला रंग, अधेड़ आयु, आधे बाल पक गये हैं ।**]

हरिश्चन्द्र—बैठिये महाराज, प्रणाम !

पण्डित—[संकोच में बैठ कर] शतायु हों आप...[**प्रयागद किवाड़ पकड़ कर खड़े होते हैं**]

हरिश्चन्द्र—[हँसकर] मुझे बड़ी आयु का आशीर्वाद न दें । इस बन्धन म अधिक दिन रहने की इच्छा मेरी नहीं ।

पण्डित—राम ! राम ! क्या कह रहे हैं आप ? पुण्यात्मा बराबर शतायु होते हैं ।

हरिश्चन्द्र—भगवान् शंकराचार्य बत्तीस वर्ष की अवस्था में परलोक सिधारे थे । मैं कुछ अधिक हो रहा हूँ । छोड़िए यह सब...आप यहाँ तीन दिन से बराबर आ रहे हैं, बिना कुछ कहे चले जाते हैं ।

पण्डित—[घबड़ाहट में सब ओर देख कर] जी, क्या...कहूँ ?

हरिश्चन्द्र—कहिए जो बन पड़ेगी सेवा करूँगा । अपने संकोच से मुझे कष्ट न दें ।

पण्डित—अपने धर्म से विवश हो कर मैं काशी आया, सुना यहाँ बलि, कर्ण, हरिश्चन्द्र से दानी अग्रवालकुल-भूषण बाबू हरिश्चन्द्र हैं ।

हरिश्चन्द्र—इन देवता से दानियों का नाम लेकर आप मुझे लज्जित न करें । अपना प्रयोजन कहें, आपको क्या चाहिए ?

पण्डित—आता नित्य हूँ...कवियों और विद्वानों की मण्डली में आपको विक्रम और भोज से विराजमान देख कर...मुँह नहीं खुलता...साहस छूट जाता है । **[स्वर भारी हो उठता है, नीचे देखने लगते हैं ।]**

हरिश्चन्द्र—आप ड्योढ़ी में कब से बैठे थे ?

पण्डित—दो घड़ी से......

हरिश्चन्द्र—फिर यहाँ आये क्यों नहीं ?

पण्डित—पैर में जैसे बेड़ियां पड़ गयी थीं। मन को अंकुश दे रहा था, तीन दिन कहने का साहस नहीं हुआ...आज तो यहाँ आने में भी...

हरिश्चन्द्र—तब आप मेरी झूठी प्रशंसा कर रहे हैं। नरक की इस देह को आप बलि और कर्ण बना रहे हैं, विक्रम और भोज बना रहे हैं..फिर भी मुझसे अपना प्रयोजन तक नहीं कहते। आप को डर है, आपकी बात खाली जायेगी। यही न ?

पण्डित—दो कन्यायें छाती पर चढ़ी हैं, विवाह की आयु उनकी जा रही है। एक मेरी है, दूसरी बड़े भाई की, जिन्हें मरे भी दो वर्ष हो गये, अथाह समुद्र में कोई किनारा नहीं सूझता। भगवान् जानते हैं, तीन दिन से आपका दर्शन कर मैं कृतार्थ हूँ। इस घोर कलिकाल में, जब फिरंगी इस देश से दया और धर्म भी खींच कर विलायत भेज रहे हैं, आपको जैसे सुना वैसे ही देखा। कहने को साहस नहीं होता था, सोचता था कभी तो आप पूछेंगे।

हरिश्चन्द्र—क्या अवस्था है लड़कियों की ?....

पण्डित—धर्मावतार ! बारह दोनों पार कर गयीं। मेरा धर्म अब डूब गया। मेरे वंश में अब तक कोई कन्या बारह वर्षों तक कुमारी नहीं रही। [**स्वर भारी हो उठता है, मुंह फेर कर रो पड़ते हैं।**]

प्रेमघन—हैं ! हैं ! ब्राह्मण होकर इतने अधीर हो रहे हैं आप...

हरिश्चन्द्र—[दाँतों के नीचे ओठ काटते हैं और हथेली पर सिर रख देते हैं फिर जैसे नींद से जागकर उत्साह में] हाँ, यह लीजिये महाराज। [**उँगली से हीरे की अँगूठी निकाल कर**] आपने देर कर दिया, दो वर्ष पहले आना था, आपको। जब मेरे पास लक्ष्मी थी। सब कुछ फूँक कर मैं तो अपने ही दिगम्बर बन गया हूँ।

पण्डित—[भ ी आँखों से] इसीलिये मेरा मुँह नहीं खुलता था। आप के घर में लक्ष्मी बरसें...इस समय चलूँ...

हरिश्चन्द्र—[उद्वेग में] लीजिए यह अँगूठी। कोई भी जौहरी इसके लिए एक हजार दे देगा। मेरे पास अब यही एक अँगूठी बची है। और सब आभूषण उतरे बहुत दिन हो गये।

पण्डित—मुझे क्षमा करें दयानिधान ! अपने संकट में विचार छोड़ कर मैंने आपको कष्ट दिया। लड़कियाँ आयी हैं तो विधाता कोई उपाय करता होगा। आपके अंगों में आभूषण के चिह्न अभी शेष हैं, अब इस अन्तिम अँगूठी को भी ले लूँ मैं। नहीं भगवान् की दया से आपके दिन लौटें...और तब मैं कभी आऊँ।

हरिश्चन्द्र—आपने सुना होगा मैंने 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक लिखा है।

पण्डित—जी सुन चुका हूँ ...

हरिश्चन्द्र—उसमें सूर्यकुल के महाराज हरिश्चन्द्र सपने में दिये गये दान के लिये इसी काशी में अपनी देह डोम के हाथ बेंच

देते हैं। मृत पुत्र के शरीर से कफ़न फाड़ कर उसकी देह नंगी कर देते हैं, स्त्री शैव्या के विलाप से भी नहीं पिघलते। अपने धर्म में आप का यह सेवक भी उतना ही कठोर है। आपको देने के संकल्प से यह अँगूठी ऊँगली से निकली, अब यह फिर उसमें न जायगी।

[पण्डित उनकी ओर देखते हैं, उनकी आँखों से आँसू चल रहे हैं। हरिश्चन्द्र की आँखें भी भर आती हैं।]

प्रेमघन—ले लीजिये महाराज। अपना धर्म निबाहिये। जिस हाथ से कई लाख निकल गये, इस एक अँगूठी के निकलने से उसका क्या बने बिगड़ेगा।

पण्डित—[आवेश में खड़ा होकर, दोनों हाथ ऊपर उठा कर] जब तक यह काशी रहे, जब तक इस काशी में शंकर रहें...जब तक इस काशी के हृदय से गंगा लगी रहें, तब तक ...

हरिश्चन्द्र—तब तक इसी काशी में मेरा जन्म होता रहे बार-बार और हर जन्म में मेरी देह की भस्म यहीं गंगा में मिलती रहे...इतना ही आशीर्वाद आप दें मुझे... इससे अधिक नहीं।

प्रेमघन—हा...हा...हा...हा...आशीर्वाद म भी विवेक होना चाहिये ब्राह्मण...। आप भूल रहे थे। भक्त को आराध्य देव के बराबर बना रहे थे। सूर्यवंशी महाराज हरिश्चन्द्र के भक्त हमारे हरिश्चन्द्र हैं। समझ रहे हैं आप...

पण्डित—भगवान् आपकी कामनायें पूरी करें।

हरिश्चन्द्र—[उठ कर चौकी से नीचे उतरते हुए] हाँ, यह लीजिये... दो वर्ष पहले आप आये होते...

पण्डित— [अँगूठी लेकर] तब दानी के हृदय का यह अमृत न मिलता, धन अधिक मिला होता ।

हरिश्चन्द्र—प्रेमघन ! क्या कह रहे हैं यह देवता । तब तो मेरा दरिद्र होना ही अच्छा हुआ ।

पण्डित—कर्ण ने इन्द्र को अपने शरीर से खींच कर कुण्डल और कवच दे दिया था, जिनके रहते वह कभी मरते नहीं... पर उनका सब से बड़ा दान अपने हाथ से अपने दो दाँत तोड़कर देना था कृष्ण को, जब आधे शरीर से प्राण निकल चुका था । आज का दान कुछ उसी तरह का है । देख रहा हूँ, मेरी बातें भारतेन्दु जी को रुचती नहीं... इन्हें संकोच हो रहा है... अच्छा अब चलू... आपकी कामनायें पूरी होकर रहेंगी... नहीं तो इस धरती पर धर्म नहीं रहेगा । [**पण्डित का प्रस्थान** ।]

[**हरिश्चन्द्र मसनद पर गिरकर आँखें मूंद लेते हैं** ।]

प्रेमघन—[उनकी पीठ पर हाथ फेरते हुए] यह क्या कर रहे हैं आप ?

हरिश्चन्द्र—[जैसे जाग कर] ब्राह्मण भावुक हो गया था ।

प्रेमघन—आप भी तो कम भावुक नहीं थे ।

हरिश्चन्द्र—गोस्वामी जी से मन्त्र लेकर भी मैंने उनकी दक्षिणा

कुछ नहीं दी । यह अँगूठी तब भी मेरी उँगली में थी। उस समय उन्हें देने की नहीं सूझी ।

प्रेमघन––अच्छा आप उनका नाम नहीं लेंगे अब ? उनके पास धन की कमी नहीं है । ब्राह्मण की कन्याओं का विवाह होगा...उनकी सन्तति के रूप में आप की अँगूठी कई होंगी ।

हरिश्चन्द्र––[मुस्करा कर] पिता का, गुरु का और पति का नाम नहीं लेते ।

प्रेमघन––तब आप रूढ़िवादी बन रहे हैं ।

हरिश्चन्द्र––जवानी में रूढ़ियाँ तोड़ी जाती हैं और जब बुढ़ापा आता है, उन्हीं रूढ़ियों को जोड़ कर...उन्हीं की आड़ में प्राण बचता है । प्रयागदत्त जी गणेश को इधर तीन दिनों से नहीं देखा ।

प्रयागदत्त––रात नहीं देखा आपने ? प्रेमघन जी के साथ उसे ले भी गया था मैं वहाँ ।

हरिश्चन्द्र––अरे हाँ ... अब मुझे कुछ याद नहीं रहता । सब से बड़ा रोग तो मुझे यही हो गया है । [**उदास हो उठते हैं ।**]

प्रेमघन––देखिए आपके उदास होने पर हम सब के ओंठ की हँसी सूख जायेगी ।

हरिश्चन्द्र––सब दिन एक तरह से कोई हँस भी तो न सकेगा ।

प्रेमघन—आप 'कोई' नहीं हैं। आप की हँसी से प्रेरित होकर हमारी नागरी अपना शृंगार करती है। आप मातृभाषा के सुमेरु हैं।

हरिश्चन्द्र—प्रेमघन तुम मुझसे अच्छा लिख लेते हो, नाटक, आलोचना, निबन्ध। भट्ट जी और मिश्र जी मुझसे बहुत आगे निकल गये हैं।

प्रेमघन—गुरु से आगे निकल कर भी शिष्य बराबर शिष्य ही रहेगा। हम सब के हाथ में लेखनी किसने धराया... मेरा मतलब है नागरी की लेखनी से।

हरिश्चन्द्र—यहाँ जो वार्ड्स स्कूल न खला होता, राजपूताने, मध्य-भारत, विन्ध्य क्षेत्र और हमारे अपने प्रान्त के राजकुमार जो एक साथ इतने यहाँ पढ़ने को सरकार ने न भेज दिया होता, तो दो बातें नहीं होतीं।

प्रेमघन—कौन-सी दो बात।

हरिश्चन्द्र—[गम्भीर मुद्रा में] न मैं सैलानी बनता और न नागरी को गति मिलती। राजकुमारों के साथ के कारण मुझमें विलास की मात्रा बढ़ी और साहित्य की रुचि भी। जिस जाति ने वाल्मीकि, व्यास और कालिदास को पैदा किया, सूर तुलसी और केशव जिस धरती की धूल में लोटे थे...वह ऐसी ऊसर हो गई कि फिर उसमें कोई फूल ऐसा न उगा... जिसकी गन्ध टिकती और दूर तक जाती।

प्रेमघन—एक साँस में आप बहुत कह गये। जिसे आप अपना

विलास कहते हैं, उसे मैं केवल सुरुचि मानता हूँ । दूसरे रईसों की तरह आपने केवल देह की भूख नहीं मिटायी । कीचड़ से जैसे कोई कमल उठा ले....

हरिश्चन्द्र—क्या ? नहीं समझा मैं....

प्रेमघन—अच्छी बात, तब मुझे संकोच छोड़कर कहना पड़ेगा... माधवी कीचड़ का कमल थी...उसे उठा कर आपने अपने कण्ठ की माला बना लिया । अपने प्रेम से आपने नारीमात्र की प्रतिष्ठा की है ।

हरिश्चन्द्र—झूठ का भार ढोकर मैं जीना नहीं चाहता । सत्य बचाने म धन चला गया, जमींदारी भी चली गई, बाग-बगीचे, मकान भी गये । पाँच सौ लेकर पाँच हजार दिया । सैयद अहमद चाहते थे, मुझे बहुत कम देना पड़े, निर्णय उनके हाथ म था फिर भी जिसे जो लिखा था, उसके विरुद्ध खड़े होने में मेरा प्राण काँप गया । उसी तरह तुम्हारे यह सब कहन से भी मेरा प्राण काँप रहा है ।

[गहरी साँस लेते हैं ।]

प्रेमघन—बता दें, क्या झूठ कहा मैंने ?

हरिश्चन्द्र—माधवी का रूप मेरे लिए असह्य हो उठा । साँप की आँखों का शिकार जैसे विवश बन जाता है, उसी तरह उसके सम्मोहन का शिकार बना था मैं । मेरा मन मेरे हाथ के बाहर निकल गया । मेरा आचरण यदि आदर्श बना दिया जायेगा तो मेरे जैसे बहुतेरे गिरेंगे ।

प्रेमघन—इतना ही होता, तब आप उसे वहीं रहने दिये होते, यहाँ न उठा लाते ।

हरिश्चन्द्र—बस इसी का सन्तोष मुझे है। नहीं तो जन्म भर मैंने किया क्या? जीभ के लिए स्वादु भोजन, नाक के लिए एक से बढ़ कर एक इत्र, माला, लेप, कान के लिए संगीत और नारी की मीठी वाणी, आँखों के लिए प्रकृति के दृश्य, चित्रकारों के चित्र, रमणी का मोहक रूप ... सारे शरीर के लिए गहने और कपड़े, सोने के लिए मुलायम सेज और किया क्या मैंने ?

प्रेमघन—इनमें कोई काम ऐसा नहीं है, जो संसार में जन्म लेकर पुरुष को नहीं करना है, और फिर बिना इस सामग्री के सरस्वती की वीणा बजती भी नहीं। कवि का आसन वही है, जो इस सृष्टि के रचने वाले का है। यह सब इस काशीपुरी के चौखम्भा महल्ले के रहने वाले अग्रवाल हरिश्चन्द्र ने नहीं किया ... कर भी नहीं सकता था वह ... यह सब किया कवि हरिश्चन्द्र ने, जो धरती के जिस छोर पर पैदा होता, जिस किसी भी घर में जन्म लेता, यही करता ।

हरिश्चन्द्र—तुम कहते हो, यह सब कवि का धर्म है ।

प्रेमघन—निश्चय ! पूरे विश्वास और सम्पूर्ण निष्ठा से ।

हरिश्चन्द्र—यह तुम सब कहाँ जान गये ?

प्रेमघन—साहित्य के अपने गुरु के जीवन से मुझे यह सब मिला है।

हरिश्चन्द्र—क्या इसमें दर्शन की ध्वनि नहीं है ?

प्रेमघन—दर्शन कब किस आकाश से टपका है, वह भी तो जीवन से ही प्रसूत है।

हरिश्चन्द्र—प्रेमघन ! **[दोनों हाथों से पकड़ कर छाती से लगा लेते हैं]**

प्रेमघन—[हँस कर] जी ...

हरिश्चन्द्र—मेरा अधूरा काम तुम पूरा करना।

प्रेमघन—और मेरा शेष कार्य वे करेंगे, जो बाद में आयेंगे। प्रकृति अपनी उपज में बराबर बढ़ती रहेगी। सरस्वती के साधक चले जाते हैं, पर उनकी वीणा बजती रहती है। प्रयाग, देखना कौन है ?

प्रयागदत्त—[आगे बढ़कर किवाड़ के बाहर से डाकिया के हाथ से पत्रों का ढेर ले लेता है और प्रेमघन के आगे चौकी पर रख देता है] आज तो बहुत हैं।

हरिश्चन्द्र—देखो विदेश का तो कोई पत्र नहीं है ?

प्रेमघन—[समाचार-पत्रों पत्रिकाओं को अलग कर] दो हैं ..

हरिश्चन्द्र—खोल कर देखो।

प्रेमघन—मैं ....

हरिश्चन्द्र—हाँ... हाँ ... वहाँ मेरी कोई प्रेयसी नहीं है।

प्रेमघन—कहीं हो ... ?

हरिश्चन्द्र—यहाँ की देख चुके हो ... उसे भी देख लो !

प्रेमघन—[एक लिफाफा फाड़ कर] अरे इस पत्र में तो कविता लिखी है। ऊपर नीचे एक एक दोहा ... बीच में सवैया।

हरिश्चन्द्र—इधर देना। [**प्रेमघन के हाथ से लेकर**] हाँ ... यह पत्र विलायत के फ्रेडरिक पिन्कॉट का है। वाह ... कितने सुन्दर दोहे हैं, और सवैया भी क्या बनी है।

प्रेमघन—लाइये पढ़ें।

हरिश्चन्द्र—मेरी प्रशंसा में दोनों दोहे और सवैया हैं? भले आदमी को कविता लिखनी थी, राधाकृष्ण पर लिखी होती ... मुझ पर लिख कर क्या मिला उन्हें? पर देखो तो शब्द और भाव कितने गठे हैं। पढ़ना मत ... कविता में अपनी प्रशंसा सुनना मेरे लिये बुरा होगा। सरस्वती का कोप पड़ेगा मुझ पर ...

प्रेमघन—ईसाई हैं वे ... आपके राधाकृष्ण को तो क्या जानेंगे!

हरिश्चन्द्र—कोई ऐसा दिन नहीं आयेगा, जब सभी देशों में राधा-कृष्ण पर कवितायें बनेंगी! [**वह पत्र प्रेमघन को देकर**] दूसरा देना [**उनके हाथ से पत्र लेकर लिफाफा फाड़ कर पत्र देखते हैं**] और बना ...

प्रेमघन—[उत्सुक होकर] क्या?

हरिश्चन्द्र—ये अंग्रेज बड़े पदों पर रह कर भी झूठ बोलते हैं। अलबर्ट बिल का कभी मैंने विरोध किया है?

प्रेमघन—कभी तो नहीं ...

हरिश्चन्द्र—फिर इतिहासकार कर्नल मैलेसन ने सेन्ट जेम्स हाल में कैसे कह दिया—प्रसिद्ध इतिहासकार और कवि बाबू हरिश्चन्द्र इसके पक्ष में नहीं है। उनके दो पत्र मेरे पास आये हैं। देख रहे हो। इस कर्नल को न तो मैंने कभी पत्र लिखा और न जुरिस्डिक्शन बिल का विरोध ही किया। फिर भी यह इतिहासकार होकर झूठ का आविष्कार कर रहा है। हम लोगों को देश-द्रोही बनाने की कला भी अंग्रेज खूब जानते हैं।

प्रेमघन—बिना लिखे वह दो पत्र की बात कह रहा है।

हरिश्चन्द्र—उसको मैंने कभी पत्र नहीं लिखा। इन्हीं पिन्कॉट से मेरा पत्र-व्यवहार पुराना है··· इसीलिए कि वहाँ के अंग्रेजी पत्रों में वे हिन्दी साहित्य और साहित्यकारों के बारे में लिखते रहते हैं। उनको मैंने लिख दिया था कि इस बिल को आवश्यकता न शासक के हित में है न शासित के।

प्रेमघन—हिन्दी में दोहे सवैया लिख कर भी पिन्काट पहले अंग्रेज हैं.... आपका पत्र उन्होंने मैलेसन को दिखा दिया होगा।

हरिश्चन्द्र—तब फिर एक ओर सरकार के लिये मैं राजद्रोही हूँ और अब जनता के लिये देशद्रोही बनूँगा। इस प्रचार का उत्तर मुझे पत्रों में तुरन्त दे देना चाहिए। ठीक न?

प्रेमघन—हाँ ... हाँ ... बद अच्छा बदनाम बुरा।

हरिश्चन्द्र—बन्द करो यह सब इस समय। सिर खौल उठा। गणेश नहीं आया प्रयागदत्त जी...........

प्रयागदत्त—आप बुला रहे हैं उसे..अभी आया। [**प्रयागदत्त का प्रस्थान**।]

हरिश्चन्द्र—अरे रुको...[**प्रयागदत्त बाहर से झाँकता है**] न हो चिट्ठियों को मल्लिका को दे आओ...मुझे बता देगी किस पत्र में क्या लिखा है।

प्रेमघन—हिन्दी पढ़ लेती है?

हरिश्चन्द्र—भली भाँति; बँगला, संस्कृत, अंग्रेजी और अब हिन्दी भी। कई लेख बोल दिया, इधर वह शुद्ध लिखती गयी। [**प्रयागदत्त भीतर आकर उनके हाथ से पत्रों को लेता है**।]

प्रयागदत्त—अभी घर पर नहीं थीं...

हरिश्चन्द्र—[चौंक कर] कहाँ है..यह समय तो ठाकुर-पूजा का है।

प्रेमघन—माधवी के यहाँ वे भी रुक गयीं।

हरिश्चन्द्र—तब रहने दो...[**पत्रों को मसनद के नीचे रख कर**] गणेश को भेज कर देखो अभी आयी...न आयी हो तो वहाँ जाकर देख लेना माधवी के यहाँ। [**प्रयागदत्त का प्रस्थान। राधाकृष्णदास का प्रवेश**।] पूजा कर चुके बच्चा?

राधाकृष्णदास—जी.....

प्रेमघन—किसकी पूजा करते हैं ये?

हरिश्चन्द्र—अपने नाम की...

प्रेमघन—अपने नाम की ... ?

हरिश्चन्द्र—इनके नाम के देवता नहीं होते युगल जोड़ी...

प्रेमघन—अच्छा राधाकृष्ण के उपासक हैं ये...क्यों बच्चा, सीताराम की पूजा नहीं करते ?

हरिश्चन्द्र—तुम भी प्रेमघन...सीताराम की पूजा कर बन-बन की धूल फाँकनी है। राधाकृष्ण की पूजा से मोहन-भोग मालपूआ...गोपाल मन्दिर का प्रसाद खा कर इसकी जीभ बिगड़ चुकी है। राधाकृष्ण की पूजा में दो बात निश्चित हैं, सुन्दरी स्त्री और तर माल......

राधाकृष्णदास—[मुस्करा कर] तब में यहाँ नहीं रहूँगा।

हरिश्चन्द्र—प्रेमघन जी, देखिये लड़की की तरह लजा रहा है यह। इसे 'महाराणा प्रताप' लिखना है। इसीलिए यह मेरे साथ उदयपुर की यात्रा करेगा। कहिए तो 'महाराणा प्रताप' कौन लिख सकेगा...लड़की सा लजाने वाला या पुरुष की तरह स्वादिष्ट भोजन और सुन्दरी स्त्री की कामना करने वाला ? महाराणा प्रताप पर नाटक लिखने के पहले इसे पूर्ण पुरुष बनना पड़ेगा या नहीं ?

प्रेमघन—इसमें क्या सन्देह है ?

हरिश्चन्द्र—पूर्ण पुरुष बनने के लिए आवश्यक होगा कालिदास का साहित्य पढ़ना और उसके लिए आवश्यक है सुन्दर भोजन और सुन्दरी स्त्री। कैसा समय आया है कि स्त्री के नाम

से लोग भागने लगे हैं, जिससे कि सभी जानते हैं कोई भाग नहीं सकता । प्रकृति के सब से बड़े धर्म में अब हमारा देश लजा रहा है । इसका फल जानते हैं क्या होगा ?

प्रेमघन—आप ही कहें...

हरिश्चन्द्र—लुक छिप कर बुराई बढ़ेगी । जीवन का स्वाभाविक मार्ग छूट जायगा । [**नौ वर्ष के बालक गणेश के साथ प्रयागदत्त का प्रवेश**] क्यों गणेश ! अब तो झाँझ बजाते हो न ?

गणेश—हूँ...कहाँ...वह तो बाबू जी ने तभी दरबान को दे दिया ।

हरिश्चन्द्र—क्या कह रहे हो ? घर नहीं ले गये.....

गणेश—नहीं तो... दरबान को दे दिया ।

हरिश्चन्द्र—क्यों पण्डित...[**उद्वेग और क्रोध में देखते हैं ।**]

प्रयागदत्त—जी...रामलगन को दे दिया ।

हरिश्चन्द्र—अच्छा...मुझे तो नहीं दे गया वह...कोई वस्तु मैं कभी लौटाने को देता हूँ...ब्राह्मण के बालक को जो दे दिया फिर लौटा लूँगा ? इतने दिन साथ रह कर आपने मुझे अभी यही समझा है । तब कहिये मैं सब ओर से ठगा गया । जिनके लिए मुझे इतने अपवाद सहने पड़े वह लोग भी मुझसे दुराव करते हैं । मेरे दुर्भाग्य का अन्त नहीं । [**क्रोध से प्रयागदत्त की ओर देखते हैं । गणेश चौकी पर चढ़कर उनसे लिपट जाता है ।**]

गणेश—म झाँझ लूँगा। मुझे मँगा दीजिये।

हरिश्चन्द्र—अभी लो। खड़े मत रहो पण्डित ले आओ अभी कहाँ रक्खा है।

प्रेमघन—क्या है?

हरिश्चन्द्र—वही सोने का पनडब्बा... यह लड़का उस रात को चार-पाँच दिन पहले...एक रामायणी यहाँ आये थे। उनकी रामायण की नकल उतार कर थपोड़ी पीट रहा था...मैं उसके दोनों पल्ले बजाने लगा यह मचल पड़ा उसे बजाने के लिए। मैंने इसे दे दिया। यह यहीं बजा रहा था, तब तक मैं भीतर चला गया। कह रहा हूँ, जाकर ले आओ...तुम नहीं ले गये। वह दरबान पचा जाना चाहता है। गणेश मेरे गोपाल का रूप है इसकी वस्तु वह कैसे पचा लेगा?

[प्रयागदत्त का सिर नीचे कर प्रस्थान।]

राधाकृष्णदास—कई दिन से यहाँ न देख कर पूछने वाला था मैं।

हरिश्चन्द्र—दो स्त्रियों से प्रयाग को कोई सन्तान नहीं हुई। एक दिन उदास देख कर मैंने पूछा और सब जान कर तीसरा विवाह करने को कहा और मेरी जीभ जैसी बेलगाम है, यह भी कह दिया तुम्हें इस विवाह से पुत्र होगा। **[गणेश के सिर पर हाथ फेरकर]** इसने जन्म लेकर मेरी बात सही कर दी। दस भर के पनडब्बे में क्या है....बालक की देह में

भगवान का वास होता है। यह इस योग्य तो हुआ कि मचल कर मुझसे कुछ ले ले। मैं भी ऐसा सूम कि अब तक इसे कुछ नहीं दिया था। इसकी माँ...जब यह छः महीने का था एक बार इसे मेरे घर में ले भी आयी थी... फिर भी पाँच रुपया देकर मैं टाल गया। ब्राह्मणी उदास हो गयी थी, इसका पता भी मुझे चल गया था। पर हर बात का संयोग होता है।

प्रेमघन—दक्षिणी ब्राह्मण का तो आपने मुँह बन्द कर दिया...

हरिश्चन्द्र—तुम चुप नहीं रहोगे ?

प्रेमघन—मैं पूछूँ, आप सब ओर समान रूप से दानी कब तक बने रहेंगे? राह चलते अपना प्रेम और धन आप दोनों कब तक बाँटते रहेंगे ?

हरिश्चन्द्र—प्रेमघन ! यह भी भाग्य की बात है, मेरा प्रेम और धन दोनों साथ ही समाप्त हुए। जिसे तुम प्रेम समझते हो, वह तो वह डोरी है, जिससे मैं तुम लोगों के साथ बँधा हूँ।

प्रेमघन—केवल हम लोगों के साथ ?

हरिश्चन्द्र—[हँस कर] वह दोनों भी तुम्हीं लोगों में से हैं। कितनों के निकट जाने का अवसर मुझे मिला, पर सब जगह मैं स्नेह बाँटता नहीं फिरा। इस बात में कंजूस रहा हूँ। धन देने में चाहे बराबर मेरे हाथ खुले रहे हों, पर प्रेम देने में मेरा हृदय कभी-कभी खुला है।

[सोने का पनडब्बा लेकर प्रयागदत्त का प्रवेश ।] चौकी पर उनके निकट रख देता है **[गणेश उसे ललचायी आँखों से देख रहा है ।]**

प्रेमघन—ले लो गणेश। देखता क्या है, कैसा ब्राह्मण है यह?

हरिश्चन्द्र—इसका बाप मुझे नहीं पहचानता... पर यह पहचानता है। सच कहने वाला शपथ लेना नहीं जानता...नहीं तो...

प्रेमघन—आप भी शपथ लेते ?

हरिश्चन्द्र—हाँ....और शपथ लेकर कहता, गोपाल मन्दिर में जब कभी गया, विश्वनाथ और अन्नपूर्णा का जब दर्शन किया, बराबर वहाँ यही माँगा कि प्रयाग को पुत्र हो। वही गणेश है यह।

[प्रयाग दीवाल पकड़ कर रो पड़ता है।]

प्रेमघन—क्यों पण्डित क्या है ?

प्रयागदत्त—भगवान मेरी बात मानते और मालिक को मेरी आयु दे देते । मैं जी कर क्या करूँगा अब।

राधाकृष्णदास—दो लड़के और तीन स्त्रियाँ...पण्डित...

प्रयागदत्त—हँसी न करें बाबू... पहले भी कौन कमा कर खिलाता था उन्हें। इसी घर से तो जाता रहा...मेरे न रहने पर भी जायगा।

हरिश्चन्द्र—ब्रह्मघात का पाप दोगे मझे तुम... किसी जन्म में

तुम्हारा जो खाया था, वही भरता रहा हूँ। कौन जाने अभी बाकी हो और फिर भी भरना पड़े।

प्रयागदत्त—सब लोग सुन लें [**दोनों हाथ उठाकर**] मैं दोनों हाथ उठा कर कहता हूँ अब मुझे मालिक से कुछ भी...

प्रेमघन—हैं हैं....चुप....तुम्हारा ऋण भरने के लिए ही इन्हें अभी और जीना हो तो...!

प्रयागदत्त—हे भगवान्....तब सौ वर्ष जियें और बराबर भरते रहें।

हरिश्चन्द्र—सुन लिया....बड़े तपस्वी बने हैं आप....हाँ गणेश लो यह। ले जाकर अपनी माँ को दे देना समझे। [**गणेश दोनों हाथों से पकड़ता है**] आप साथ-साथ चले जाइए... सब ओर देखते जाइयेगा, नहीं तो यह काशी है।

राधाकृष्णदास—हाँ....शिव के गण इस कला में बहुत आगे बढ़ रहे हैं।

प्रयागदत्त—जी नीचे अँगोछे में बाँध लूँगा।

[**गणेश की बाँह पकड़ कर प्रयागदत्त का प्रस्थान**]

गणेश—[बाहर से] नहीं दूँगा, फिर दे दोगे.... घर तक बजात जाब....माई के देब....[**पनडब्बा बजाने की ध्वनि, प्रेमघन और राधाकृष्णदास हँसते हैं।**]

हरिश्चन्द्र—बच्चा तुम साथ चले जाओ। यह ब्राह्मण सबेरे भी भाँग पीता है, कौन जाने?

[**राधाकृष्णदास का प्रस्थान**]

प्रेमघन—इसी एक घटना पर नाटक लिखा जा सकता है।

हरिश्चन्द्र—पर तुम मेरे साथ पक्षपात करोगे। छोड़ दो यह काम किसी दूसरे के लिए, जो हमें कल्पना की आँखों से देखेगा। सम्भव है यह घटना किसी आने वाले नाटककार की कल्पना को उत्तेजित कर उसे लिखने के लिए विवश करे।

प्रेमघन—हमारी भारती के मन्दिर के चारों ओर जो बीहड़ बन उग आया था पूरे एक हजार वर्षों की परतंत्रता में....आपने वहाँ तक पहुचने की सड़क निकाल दी है। दूसरे पुजारी वहाँ तक अब पहुँच सकेंगे और इस रास्ते को भी चौड़ा करेंगे। कभी वह दिन आयेगा कि जब इस भयावने वन की जगह सुन्दर उद्यान होगा। कटीले पेड़ों की जगह फल और फूल के भार से झुके पेड़ होंगे।

हरिश्चन्द्र—और तब इस घटना पर नाटक लिखा जायगा।

प्रेमघन—हाँ जब हमारा देश स्वतंत्र होगा...हमारी भारती भी स्वतन्त्र होगी।

हरिश्चन्द्र—भारती की स्वतन्त्रता के लिये संस्कृत का अध्ययन लेखकों के लिए आवश्यक होगा। मुझे तो डर है, देश के स्वतन्त्र होने पर भी हमारी भारती विदेशी भाषा के चंगुल में परतन्त्र न बनी रहे। संस्कृत न जानने से हम सब आधे सभ्य हैं।

प्रेमघन—आधे सभ्य हैं!

हरिश्चन्द्र—चौंक क्यों रहे हो....बंगाल पर अंग्रेजी का जाल बिछता

जा रहा है शेक्सपियर की सब ओर धूम मची है....
कालिदास का कोई नाम नहीं लेता। यह लक्षण क्या
हमारी भारती की परतन्त्रता के नहीं हैं! पण्डित शीतला
प्रसाद तिवारी न होते तो अपने बल से संस्कृत नाटकों
को मैं समझता कैसे?

प्रेमघन—पंजाब विश्वविद्यालय के एफ० ए० के आप संस्कृत-परीक्षक
हैं।

हरिश्चन्द्र—बस यही एक झूठ मेरे जीवन के साथ लगा है। संस्कृत
की समस्यायें पण्डित शीतला प्रसाद बनाते हैं और उन्हें
रट कर मैं संस्कृत का कवि बनता हूँ। पंजाब विश्वविद्यालय की उत्तर पुस्तकें वे देखते हैं और परीक्षक मैं
बना हूँ। तुमसे जब कुछ नहीं छिपा, यह भी न छिपा
रहे। तुम नंगे हरिश्चन्द्र को देख रहे हो, और लोग पर्दे
में देखते हैं मुझे।

प्रेमघन—पूर्व जन्म के कोई शापभ्रष्ट ऋषि या राजा आप इस धरती
पर आ गये। मुझे तो अब अपने भाग्य से डाह हो रही
है।

हरिश्चन्द्र—क्यों...चुप क्यों हो गये?

प्रेमघन—इतना अधिक विश्वास आप मेरा कैसे करने लगे?

हरिश्चन्द्र—विश्वास मन के गहरे तल से उठता है, प्रेमघन! इसमें
तर्क वितर्क नहीं होता। मैं भी नहीं जानता तुमने पहले
ही दिन मुझ पर क्या टोना किया कि मैं तुम्हारी आँखों
में अपना मुँह देखने लगा।

प्रेमघन—'मोह न नारि नारि के रूपा' तब आप मुझ पर मोह गये ?

हरिश्चन्द्र—हाँ, पर गोसाईं ने यह नहीं लिखा है कि पुरुष पुरुष के रूप पर नहीं मोहता। तुम्हारी आँखों का वार सचमुच सहा नहीं गया मुझसे। तुम मेरी कृपा के लिए नहीं आये थे, इसीलिए मैं तुमसे हार गया। एक से एक बढ़ कर हँसौड़ साहित्यकार आते हैं मेरे यहाँ....पर जो तुमने देखा और किसने देखा है ?

प्रेमघन—आप का संकेत अपनी प्रेमिकाओं की ओर है।

हरिश्चन्द्र—यही सही। तुम्हें छोड़ कर किस दूसरे साहित्यिक ने देखा है उन दोनों को !

प्रेमघन—आप जानते हैं कि मुझसे कोई शंका नहीं है।

हरिश्चन्द्र—[हँस कर] तुम्हारी आँखों से शंका है मुझे...फिर भी कोई बाधा न दूँगा मैं, है साहस ?

प्रेमघन—जी नहीं। माखनचोर का भक्त मैं नहीं हूँ। मैं शैव भी हूँ, शाक्त भी हूँ, वहीं तक वैष्णव हूँ, जहाँ तक तुलसी के राम का शील और संयम है। उनके धनुष की टंकार से डरता हूँ मैं।

हरिश्चन्द्र—कहो कि तुम पत्नीव्रत मानते हो।

प्रेमघन—पतिव्रत भी तभी तक चलता है जब तक पत्नीव्रत है, नहीं तो—

'मूँदहु आँख कतहुँ कोउ नाहीं'

[**हरिश्चन्द्र खुल कर हँसते हैं।**]

राधाकृष्णदास—[प्रवेश कर] महाराज का सिपाही आया है। यह पत्र है....अभी रामनगर बुलाया है आप को।

हरिश्चन्द्र—[पत्र लेकर देखते हुए] गोकुल कहाँ है......

राधाकृष्णदास—जी वे वहीं गये हैं।

हरिश्चन्द्र—मरने पर ही चैन मिलेगी। अभी मुझसे बातें कर गया। जो कहना था, यहीं कह देता। रात को भी कह गया बात करने को। तब तक वहाँ पहुँच गया। उनकी आँखों में भी मुझे गिराने से नहीं चूकता। क्या कहूँ? जाना तो है ही, उनकी अवज्ञा करने का दोष क्यों लूँ। चलोगे प्रेमघन तुम भी?

प्रेमघन—क्या हर्ज है। किला भी देख लूंगा और महाराजा से भेंट भी होगी।

हरिश्चन्द्र—हाँ चलो...सरस्वती-भवन भी देख लेना।

[पर्दा गिरता है]

तीसरा अंक

[माधवी का मकान । पहले अंक के कमरे के सामने की छत-पर चटाई बिछाकर माधवी बैठी है। दिन डूब चुका है । इस छत से भीतर के कमरे का दृश्य किवाड़ों के खुले रहने से देख पड़ता है । कमरे के भीतर की सभी वस्तुएँ वैसी ही हैं जैसी पिछली रात को थीं । माधवी ऊपर आकाश की ओर देखती है और कभी सामने गली की ओर । प्रयागदत्त का प्रवेश ।]

माधवी—एक सुपारी के कै फांक...

प्रयागदत्त—दो...

माधवी—चलो तब मेरे एक जोन्हीं देखने का दोष तुम्हें लगेगा। बड़ी देर से यह एक जोन्हीं देख रही हूँ दूसरा कोई निकलता ही नहीं।

प्रयागदत्त—भीतर चलो नहीं तो कोई तारा नहीं निकलेगा। किसकी हिम्मत होगी भला....

माधवी—फिर बहकने लगे। **[बनावटी क्रोध से देखती है]**

प्रयागदत्त—अरे सुनो ! तुम्हें देखकर, लजाकर छिप जाते हैं सब..

[मुँह घुमाकर मुस्कराता है]

माधवी—तंग मत करो पंडित... **[भवें टेढ़ी कर आँख तरेरती है]**

प्रयागदत्त—सन्देह हो रहा है उन सबको...यह नया चाँद कहाँ से निकल आया है।

माधवी—यह एक कैसे निकल आया।

प्रयागदत्त—तुम्हारी तरह यह भी ढीठ है। किसी की रोक थाम नहीं मानता।

माधवी—ढीठ तुम्हारी बहन हो मैं काहे को हूँगी। [**मुस्करा पड़ती है।**]

प्रयागदत्त—तुम भी किसी की बहन हो। मेरी न सही अपने भाई की बहन।

[**मल्लिका का प्रवेश**]

मल्लिका—अच्छा तो यहाँ परिहास चल रहा है?

प्रयागदत्त—आप यहां क्यों चली आईं...थोड़ी देर रुक गयी होतीं.... छिपकर सुनी होतीं बड़ी बड़ी बातें खुलतीं। आप नहीं जानतीं...पुराने समय में राजा के विदूषक होते थे। राजा और रानी को हँसाना उसका काम होता था।

मल्लिका—अच्छा तो आप वही विदूषक हैं।

प्रयागदत्त—बीस साल हो गया मुझे यही काम करते । विदूषक और दूत दोनों का काम किया है।

माधवी—चुप नहीं रहोगे तुम । कान पकड़ कर निकाल दूँगी। [**उँगलियों से कान पकड़ने की मुद्रा बनाती है**]

प्रयागदत्त—ऐसा समय आ गया...तुम्हारा दोष नहीं...कोई वह समय था जब रानियाँ विदूषक को अपने हाथ लड्डू खिलाती थीं...और अब कान पकड़ कर निकाला जाता है। कलियुग है कलियुग...

माधवी—सतयुग में लोग पत्ती खाकर...हवा पीकर रहते थे...
तब **लड्डू** कहाँ था ?

मल्लिका—लोग कपड़ा भी नहीं पहनते थे। बंगाल में..कलकत्ते में जहाँ कहीं पढ़े लिखे लोग बैठते हैं बड़े से बड़े कवि और लेखक इसी विषय की बातें करते हैं..मनुष्य जब गुफा में रहता था..उसकी देह पर रीछ से लम्बे बाल होते थे। कच्चा कन्द मूल खाते थे..नर मादा सभी गरोह बांध कर नंगे रहते थे।

माधवी—[चौंककर उठती है और अपनी साड़ी ठीक करती है] रहने दो मल्लिका! मुझे डर लगता है।

मल्लिका—यही समझो कि आज से बीस हजार वर्ष पहले हम लोगों की देह पर [**हथेली के अन्त में उँगली रखकर**] इतने बड़े बड़े बाल थे। बाल के नीचे बकरी का चमड़ा जैसे छिपा रहता है...हम लोगों का भी छिपा था।

माधवी—बन्द करो यह सब...जिस बात को सुनकर डर लगती है वह जब होती रही होगी तब...

प्रयागदत्त—ऐसी बात...इसीलिये सतयुग में कहीं पाप नहीं था...जो कुछ होता था सभी पुण्य था...अकेले स्वर्ग था। नरक तब बाद में बना। जब सब लोग नंगे रहते थे..स्त्री पुरुष सब गरोह बांध कर, जैसे नील गाय, मृग आदि का झुण्ड होता है।

माधवी—रहने दो अपना वेद पंडित!.. .कहाँ से आ रही हो?

[मल्लिका के कन्धे पर हाथ रखती है] भीतर बत्तियाँ जला दीजिये दूत जी..और दूसरा नाम क्या कहा था ?

मल्लिका—विदूषक...

माधवी—दूत चिट्ठी पत्री पहुँचाता है...सन्देशा कहता है और विदूषक क्या करता है ?

प्रयागदत्त—कभी राजा की ओर होकर रानी को चिढ़ाता है कभी रानी की ओर होकर राजा को। **[आँखें नचाकर मुस्कराता है।]**

माधवी—दोनों में झगड़ा लगाता है!!...क्यों...?

प्रयागदत्त—इसी से दोनों उसकी मुट्ठी में रहते हैं। राजा अपना मुकुट देता है और रानी अपना कंकण...**[हँसता हुआ भीतर कमरे में चला जाता है।]**

माधवी—गोसाईं जी के साथ नाव पर चलने की बात थी आज ?

मल्लिका—वे लोग रामनगर महाराजा के यहाँ चले गये।

माधवी—कौन लोग...

मल्लिका—भारतेन्दु जी...यही सुनना चाहती थीं न...

माधवी—रामनगर..कब गये ? **[खेद और विस्मय की मुद्रा में]**

मल्लिका—दोपहर को..महाराज का सिपाही पत्र लेकर आया था।

माधवी—छोटे साहब नहीं गये ?

मल्लिका—गोकुल बाबू पहले चले गये थे...

माधवी—यही तो..वहाँ जाकर घर फूँकने की बात कहकर रोये होंगे। महाराज ने बुलाया होगा। साथ कोई और गया है ?

मल्लिका—प्रेमघन जी गये हैं।

माधवी—हूँ तब गोसाईं जी से कह गये होंगे आज नाव पर जाना नहीं हो सकता।

मल्लिका—तुम नहीं जा सकीं और लोग तो हो आये।

माधवी—[उत्सुक होकर] तुम गयी थी मल्लिका!

मल्लिका—मैं वहीं माताजी के साथ थी, वहीं से बुला ली गयी। पर वहाँ तो नाव पर बूटी बन रही थी। गोसाईं जी के परिवार की देवियाँ...कई शिष्य दोनों भाई यह भी थे प्रेमघन जी, राधाकृष्ण भी जैसे टोह में चले गये।

माधवी—तब कहो कि पूरा मेला हो गया।

मल्लिका—यही सोचकर उन्होंने तुम्हें नहीं बुलवाया और मुझसे भी कह दिया गोस्वामी जी का पैर छूकर विदा लेने को।

माधवी—तब तो आधी रात से पहले लौटते नहीं।

मल्लिका—रामनगर से लौटानी ज्यों ही नाव दशाश्वमेध पर लगी गोसाईं जी का बजड़ा भी तैयार था। देखते ही ठठा कर हँसे और सबको दोनों हाथ हिलाकर अपनी नाव पर बुला लिये।

माधवी—गोस्वामी जी भी भाँग पीते होंगे?

मल्लिका—इस धरती पर भांग की दो ही जगहें हैं काशी और मथुरा। सो दोनों से गोसाईं जी का सम्बन्ध है। या इन्हीं लोगों के लिये बन रही होगी।

माधवी—चलो प्रयाग के साथ हम भी चलें, माता जी से दो बात हो जायेंगी और एक छोटी नाव पर थोड़ी देर गंगा में घूम भी लेंगी।

मल्लिका—माता जी के यहाँ चलोगी ?

माधवी—क्यों तुम नहीं जाती ?

मल्लिका—मेरे बारे में वह जानती हैं कि भारतेन्दु बाबू की शरण में रहकर मैं काशीवास कर रही हूँ।

माधवी—यही इतना मेरे बारे में भी जान जायेंगी।

मल्लिका—बंगाल के विद्वानों में जो सूर्य हैं उन्हीं ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की माँ हैं वे। उनके पास जाने में भी डर लगती है। बाल सब पक कर सन हो गये हैं...आधी आँखों से ही देखती हैं, फिर भी पसीना छूटने लगता है।

माधवी—सचमुच...[**भय और विस्मय की मुद्रा**]

मल्लिका—उनकी आँखें हृदय में बैठकर सब कुछ देख लेना चाहती हैं। मैं तो जाते ही पूछ बैठती हूँ। भारतेन्दु जी ने पूछा है किसी वस्तु की इच्छा हो तो कहेंगी। वे धीरे से हँस देती हैं।

माधवी—कुछ कहती नहीं...

मल्लिका—कहती हैं वे अपनी मैना को भेज कर रोज एक ही बात पूछते हैं। जहाँ महादेव आप विराजते हैं वहाँ भी किसी की कोई इच्छा होगी ?

माधवी—तब वे हम लोगों के बारे में जानती हैं।

मल्लिका—ना...कुछ भी नहीं।

माधवी—तब मैना कैसे कहा उन्होंने ?

मल्लिका—यों ही...जाते ही उनका नाम लेती हूँ इसीलिये।

माधवी—विद्यासागर अपनी माता को उनकी देखरेख में छोड़ गये और कुछ लोग यहाँ ऐसे भी हैं जो उनसे बुरा किसी को मानते ही नहीं।

मल्लिका—विद्यासागर ने अपनी शकुन्तला भी उन्हीं को समर्पित की है।

माधवी—यह कोई पुस्तक है ?

मल्लिका—कालिदास के संस्कृत नाटक का अनुवाद है।

माधवी—अब से पढ़ूँ तो मुझे आयेगा कि नहीं। उनसे जब कहती हूँ वे हँस देते हैं।

मल्लिका—कहते क्या हैं? [**उत्सुक हो उठती है।**]

माधवी—संगीत से बड़ी कोई दूसरी विद्या नहीं है। मेरे गाने से, नाचने से बड़ी कोई दूसरी कला वे नहीं मानते।

मल्लिका—सुना है वे उदयपुर जा रहे हैं।

माधवी—कब ! [**साँस रोक लेती है** ।]

मल्लिका—परसों दोपहर के बाद वे प्रस्थान कर देंगे।

माधवी—तबियत तो अभी ठीक नहीं है ?

मल्लिका—भगवान् हैं...हम लोगों के भाग्य में होगा तो...[**कंठ भर आता है** ।]

माधवी—कहाँ सुना...किसने कहा तुमसे...?[**उद्विग्न हो उठती है**]

मल्लिका—कई दिन से जानती हूँ मैं...

माधवी—उन्होंने कहा था...?

मल्लिका—हाँ...

माधवी—[दुःख में] तो मैं अब उनके किसी काम की न रही। अब तो मैं मर जाती। कम से कम तुम तो मुझ पर दया कर सकती थी ?

मल्लिका—इसीलिये तो मुझे बता दिया उन्होंने कि मेरा हृदय कठोर है। मैं कुछ भी सह लूँगी...तुम्हारे कोमल हृदय पर पहले से इसका कष्ट न हो इसी विचार से नहीं कहा होगा। तुम उनके प्रेम की स्वामिनी हो और मैं उनकी दया की भिखारिणी...हम दोनों में बड़ा अन्तर है।

माधवी—[उसकी ठुड्ढी पकड़कर] तुमको प्रेम नहीं करते ?

मल्लिका—नहीं, इतना समझने की बुद्धि मुझमें है। वे मुझ पर केवल दया करते हैं, और वही कभी कभी प्रेम के निकट पहुँच जाती है...पर प्रेम बन नहीं पाती। मुझसे कह तो दिया उन्होंने पर यह सोचा भी नहीं कि मुझे इसका कष्ट होगा। तुमसे जब करेंगे उनकी आँखें भरी रहेंगी। हृदय धड़कता रहेगा।

माधवी—चल रही हो मेरे साथ.. ?

मल्लिका—कहाँ... ?

माधवी—जहाँ उनकी नाव हो वहीं पूछूँगी...गंगा की बीच धार में जिस दिन देख लूँगी उनका मन मुझसे हट रहा...उसी दिन...

मल्लिका—डरा रही हो मुझे...बहन! ना...ना...इस तरह न

देखो...देख लो तुम्हें देखकर मेरे रोयें फूट गये। **[बाँह आगे बढ़ती है।]**

माधवी—कह तो दिया उसी दिन..फिर कोई न देखेगा मैं कहाँ गयी। हाँ, रे! कमलगट्टे पर जैसे पतले रोयें से...

मल्लिका—मुझे तो छोटे साहब से दस रुपया मासिक जीविका मिलेगी।

माधवी—यह सब भी हो गया। मेरे लिये भी कुछ तै हुआ है? **[निराशा और कष्ट में उसकी ओर देखती रहती है।]**

मल्लिका—हुआ होगा मैं नहीं जानती।

माधवी—अरे चलो। जिसने उनका अनादर किया। सारा धन लेकर भी जो रामनगर जाकर उनकी शिकायत महाराज से करता है उससे मेरी जिन्दगी चलेगी? उसकी ओर और उसके धन की ओर मैं न देखूँगी।

मल्लिका—यही अन्तर है बहन...मुझमें और तुममें..पर दो भाइयों के बीच में पड़ना हमारा काम नहीं है।

माधवी—पंडित जी....

प्रयागदत्त—बत्तियाँ जल गयीं, और कुछ करना है!

माधवी—हाँ..यहाँ आइये।

प्रयागदत्त—[कमरे से बाहर निकल कर] कहिये...

माधवी—आप मेरे साथ चलें...जैसे हों मुझे उस नाव तक पहुँचावें। **[भारी स्वर और संकल्प की दृढ़ता]**

प्रयागदत्त—मैं वहीं से आया। भूल गया था आपसे कहना। वह आते ही होंगे अब...

माधवी—आधी रात के पहले वह नाव से नहीं उतरेंगे। मैं रुक नहीं सकती यहाँ। न चलना हो तो चली जाऊँ मैं अकेले।

प्रयागदत्त—अकेले...अँधेरे में इतनी गलियाँ पार कर...

माधवी—कौन जाने मुझे किस अँधेरी दुनिया में जाना पड़ेगा अब... [गहरी साँस]

प्रयागदत्त—बात क्या है ?

माधवी—शाम को हरारत बराबर हो जाती है...खाँसी भी चल रही है और दम भी फूल रहा है, इतने पर सुनती हूँ वह बाहर जा रहे हैं।

प्रयागदत्त—हाँ उदयपुर...राणा का बुलावा आया है।

माधवी—राणा का नहीं मेरे फूटे भाग्य का बुलावा है यह।

गोकुलचन्द्र—[प्रवेश कर] यही तो मैं भी चाहता हूँ कि किसी तरह उन्हें रोक लो किशोरी...। तुम्हारी बात नहीं टालेंगे। न मानें रोने लगो।

माधवी—यहाँ आप कैसे आये ! [**एक टक उनकी ओर देखती रहती है।**]

गोकुलचन्द्र—तुमसे कहने कि उन्हें रोक लो।

माधवी—और सब कहने आप महाराज बनारस के पास जाते हैं और यह कहने मेरे पास आये ?

गोकुलचन्द्र—यह कहने भी उनके पास गया था। उन्होंने बुलाकर

उनसे कहा भी पर वे नहीं मानते।

माधवी—उनका कहा भी नहीं मानते!

गोकुलचन्द्र—नहीं...कहते हैं कि इस देह का क्या ठिकाना। उस धरती की धूल में महाराणा प्रताप का अभिमान है। वह तो यह भी कह गये कि प्राण के डर से वह श्रीनाथ और हल्दीघाटी का दर्शन छोड़ दें...तब तो उनसे बढ़कर कायर और कौन होगा? मनुष्य की देह का यही फल है।

माधवी—तुम भीतर चलो बहन! और पंडित जी आप भी... [**दोनों का प्रस्थान**] क्या आप इस चटाई पर बैठ सकेंगे?

गोकुलचन्द्र—ठीक है...रहने दो मुझे यहीं खड़ा...

माधवी—यहाँ बैठने से आपका धर्म चला जायेगा?

गोकुलचन्द्र—बात मत बढ़ाओ किशोरी! और फिर तुम जैसी से बात करने की आदत मुझे नहीं है।

माधवी—फिर स्वर्ग की उस ऊँची चोटी से उतर कर नरक के इस खड्ड में क्यों आये आप...बुलाने नहीं गयी थी... मैं आप को।

गोकुलचन्द्र—तुम्हीं ने यह घर बिगाड़ा...चाहो तो अब से बना भी सकती हो।

माधवी—मने बिगाड़ा था किस तरह साहु जी... [**व्यंग्य की मुद्रा**]

गोकुलचन्द्र—सब जान गया हूँ...तुम बस पाँच सौ रुपया लेने के लिये मेरे घर पर नहीं गयी थीं...यह तो वहाँ जाने का

बहाना बनाया था तुमने जिससे सरकार तुम्हें देखें और तुम उन्हें...

माधवी—कह दो लल्ला ! चुप क्यों हो गये।

गोकुलचन्द्र—आग की लपट बनकर तुम उस घर में गयी थी किशोरी ! वह घर जल गया।

माधवी—बटवारे के साल भर बाद मैं उस घर में गयी थी।

गोकुलचन्द्र—और राम कटोरा वाले बाग में कब गयी थी ?

माधवी—जिस साल बटवारा हुआ।

गोकुलचन्द्र—तब...हम लोग जब जान गये कि तुम्हारा नशा अब उन पर से न उतरेगा। तब यह सोचा गया।

माधवी—यह सब कर लेने के बाद अब फिर से उनकी चिन्ता हो रही है।

गोकुलचन्द्र—तुम्हारे लिये भाई का नाता भी टूट जाय ? वह जो राह चलते...लुक-छिपकर नहीं सीधे विधाता के हाथ से बनकर आया।

माधवी—मान लूँ मैं भाई के प्रेम में इतने व्याकुल हैं आप ? नाते सभी विधाता की टाँकी पर ही टिकते हैं गोकुल बाबू...

गोकुलचन्द्र—उनकी तबियत ठीक नहीं है तुम जानती हो। खाँसी और ज्वर साथ साथ चलना क्षय कहा जाता है। सोना, हीरा, मोती और संखिया कस्तूरी का जितना रसायन बन सकता है सब बना, पर काम कुछ नहीं हुआ।

माधवी—गोकुल बाबू !...इन रसों को सँभाल कर रखियेगा... पचास साल बाद ये रस आपके घर से जब निकलेंगे, काशी के वैद्यों को विस्मय होगा। आपके भाग्य से लोग डाह करेंगे।

गोकुलचन्द्र—बोली बोल रही हो तुम...

माधवी—और क्या करूँ। हाथी के खाने के दाँत दूसरे और दिखाने के दूसरे...? जाइये...चले जाइये चुपचाप...

गोकुलचन्द्र—सीधे से बात करो...?

माधवी—किसे लाल आँख दिखा रहे हो सरकार ! मैं नहीं रोकूँगी उन्हें...तुम न आये होते यहाँ तो रोकती...प्राण देकर भी रोकती। पर अब वे जायँगे। उनकी आरती करूँगी माथे पर तिलक दूँगी और बिदा करूँगी।

गोकुलचन्द्र—जैसे धर्म से ब्याही गई हो। बड़ी सतवन्ती बनी हो !

माधवी—तुमने मेरा सत कभी नहीं बिगाड़ा है समझे। [**क्रोध में नागिन सी वेणी हिला देती है।**]

गोकुलचन्द्र—[पैर पटक कर] खींच लूँगा जीभ...मरने दो उन्हें एक धोती के लिये एक जून के भोजन के लिये इसी पैर पर पड़ोगी।

माधवी—[घृणा की हँसी] ओहो ! इनके धन से गंगा सूख जायगी मुझे डूबने का जल न देंगी...तुम्हारे सिर की ओर नहीं देखूँगी मैं पैर तो दूर की बात है। हूँ...इस आशा में पड़े हैं कि मैं हाथ जोड़कर इनके यहाँ भीख माँगने जाऊँगी

जिस दिन वे न रहे...यहाँ कोई जानेगा नहीं में क्या हुई कहाँ गयी।

गोकुलचन्द्र—अफीम खा लोगी! [**व्यंग्य की मुद्रा**]

माधवी—कुछ करूँगी तुम नहीं जानोगे। [**दोनों हाथों से अपना सिर पीट कर**] धिक्कार है तुम्हें! यह लोक तो अपने भाई का बिगाड़ा ही तुमने उनका वह लोक भी बिगाड़ रहे हो यह कह कर। इस धरती के उन अकेले देवता की छाया जब दूर जायेगी... मैं यहीं सूख जाऊँगी। मुझसे बुरी इस धरती पर कोई नहीं है..मेरे जैसा पाप कभी किसी ने किया नहीं... फिर भी मैं जिनकी हूँ वह जिधर देख देते हैं..पाप जल जाते हैं। बुराई जल जाती है।

गोकुलचन्द्र—माधवी! अभी भी समय है [**धमकी का स्वर**]

माधवी—न..न..न..इस नाम से तुम न पुकारो। मैं न रहूंगी तब भी समय रहेगा। तुम न रहोगे तब भी समय रहेगा। [**दोनों हाथों से सिर थाम कर वहीं धरती पर बैठ जाती है।**]

हरिश्चन्द्र—[प्रवेश कर] गोकुल! तुम्हारा आसरा न देखकर यह अपनी राह निकाल लेगी। स्त्री के साथ पुरुष होड़ नहीं लेता। जो कुछ कहना सुनना होता..मुझसे कह सुन लेते। पर किसी भी स्त्री में प्राण कितना होता है? यहाँ तुम्हें नहीं आना था।

गोकुलचन्द्र—मैंने दिन में कह दिया था यहाँ आन को।

हरिश्चन्द्र—मेरे लिये या इसके लिये.. इसी के कारण जब अयोग्य बनाकर तुम लोगों ने मुझे घर के धन से निकाल दिया कम से कम मेरा यही धन रहने देते। इसे रुला कर तुम्हें अब क्या मिलेगा?

माधवी—मेरी देह में आग लगाकर भी यह मुझे रुला न पायेंगे। इनके सामने मैं कभी न रोऊँगी।

गोकुलचन्द्र—मेरे सामने हँसने का भाग्य तुम्हारा नहीं था.. पर जब भाई साहब ने...

हरिश्चन्द्र—समुद्र के किनारे बालू में जितने कण होंगे.. आकाश में जितने तारे होंगे.. उनसे कहीं अधिक संख्या है मेरे पापों की.. पर जो हो गया अब कैसे मिटेगा? मुझे प्रेम करना और इससे घृणा करना दोनों एक साथ नहीं चल सकता। किसी दिन आँख बन्द हो जायेगी यह सारा टंटा मिट जायेगा।

गोकुलचन्द्र—सुनते रहे हैं आप तब... कैसे विष बुझे तीर निकलते रहे हैं इसके मुँह से...

हरिश्चन्द्र—पर क्यों? .. मुझे छोड़कर उसकी कोई दूसरी गति जो नहीं है। इसकी चिन्ता तुम्हें नहीं करनी होगी.. रह गयी मल्लिका, उसके साथ जो ठीक समझना।

माधवी—इनकी दया पर वह भी नहीं रहेगी।

[नेपथ्य में हँसी की ध्वनि]

हरिश्चन्द्र—अब तुम चले जाओ गोकुल !.. अभी भी कल का एक दिन है। देखा जायेगा... तुम्हारी राय नहीं है तो नहीं जाऊँगा। गोसाईं जी आ रहे हैं। उनके सामने कोई ऐसी बात न हो।

माधवी—पहले से ही इनकी राय माने होते तब .. मैं इनके यहाँ कर्ज के लिये नहीं आई... आई अपना रूप दिखाकर लुभाने...

हरिश्चन्द्र—तुम्हारे विषय की बातें सुन सुन कर मैं तुम पर मोहित हो गया था। माधवी ! देखने के बहुत पहले.. उस जन्म में भी तुम मेरी थी और अगले जन्म में भी मेरी ही बनोगी। गोकुल पैदा हुआ था पूर्वजों की धन, सम्पत्ति, मर्यादा के लिये पर मैं पैदा हुआ था तुम्हारे लिये। मेरे साहित्य के मूल में तुम्हारी प्रेरणा है, बिना उसके मैं भी तराजू के पलड़े पर रुपया तोलता होता।

राधाचरण—[कमरे के भीतर से] यहाँ तो कोई नहीं है। बाबू हरिश्चन्द्र सबसे परिहास करते हैं।

हरिश्चन्द्र—आया सरकार ! **[माधवी का सिर हिला कर]** चल पगली ! चरणामृत लेकर भीतर की आग ठंडी कर। देह तो फूलों की और मन पत्थर का... **[गोकुलचन्द्र की ओर देखकर]** अभी खड़े हो ?

माधवी—[खड़ी होकर आँचल पसारती हुई] यह आंचल आपके सामने नहीं फैलेगा गोकुल बाबू ! यह न भूल जाइयेगा।

[गोकुलचन्द्र क्रोध से देखकर नीचे उतर जाते हैं।

हरिश्चन्द्र कमरे में प्रवेश करते हैं, पीछे से माधवी आती है और रामचरण के पैर पर आँचल डालकर सिर रख देती है।]

राधाचरण––[झुककर उसके सिर पर हाथ रखकर] तुम्हारा सुहाग बढ़े और...

हरिश्चन्द्र––इतना बहुत है महाराज!..इसके आगे जो कुछ आप इसे देंगे उसे आज का समाज पचा न सकेगा।

राधाचरण––वैष्णवी हो जायेगी यह...

माधवी––नहीं महाराज!..तब भी इसके माँ बाप के नाम पूछे जायेंगे।

राधाचरण––[आगे बढ़कर पलंग पर बैठते हुए] पर क्या उसके न होने से आप लोगों का नाम छिपा रह जायेगा? मल्लिका कहाँ है?

माधवी––देखूँ भीतर है। [**भीतर चली जाती है। हरिश्चन्द्र वहीं नीचे बैठते हैं।**]

हरिश्चन्द्र––आप यहाँ अकेले आये?

राधाचरण––प्रेमघन वहाँ विद्यासागर जी की माता के यहाँ रुक गये हैं। यशस्वी पुत्र के लिये महिमामयी माता भी होनी चाहिये। हाँ आपने किसी दिन उनसे कहा था कि...

हरिश्चन्द्र––ऐं...कुछ कहा था उन्होंने?

राधाचरण––हाँ...कहती थीं भारतेन्दु बड़े भोले हैं..पूर्वजन्म की तपस्या से चूके हैं नहीं तो उन्हें भला इस धरती पर जन्म लेना चाहिए?

हरिश्चन्द्र—जी आप बना रहे हैं मुझे .... वह बेचारी यह सब भी कहने लगीं ?

राधाचरण—फिर भी कैसे कह दिया आपने 'विद्यासागर जैसे विख्यात पुत्र की माता के हाथ में चाँदी की चूड़ियाँ देखकर कोई क्या कहेगा ?'

हरिश्चन्द्र—गोसाईं जी ! कुछ झूठ कहा मैंने... ?

राधाचरण—विद्यासागर जी जब पहली बार आपसे मिलने आये थे क्या सच है दो घड़ी में आपने चार बार भीतर जाकर कपड़े बदले थे ?

हरिश्चन्द्र—जी..... यह सच है।

राधाचरण—आपने समझा बार-बार कपड़े बदलने का प्रभाव विद्यासागर पर अच्छा पड़ेगा।

हरिश्चन्द्र—वैश्य जन्म से जो हूँ... विद्या और प्रताप मेरी जाति के गुणों में तो आते नहीं, सिवा धन दिखाने के और दिखाता ही क्या। कुशल हुई रुपयों के तोड़े न दिखा कर मैं कपड़े दिखाने लगा उन्हें !

राधाचरण—तो आपने जान बूझकर किया यह ?

हरिश्चन्द्र—जी नहीं... जानबूझ कर नहीं किया ... जाति का स्वभाव उस समय मेरे भीतर जाग उठा। असत्य कहता होऊँ तो कान पकड़िये मेरा...

राधाचरण—उसी वृत्ति से उनकी माता के हाथों में चाँदी की चूड़ियाँ आपको नहीं जँचीं।

हरिश्चन्द्र—विद्यासागर की माता चाँदी की चूड़ी पहने तब फिर देश भर के धनियों का धन क्या होगा। इस दृष्टि से क्यों नहीं देखते...

राधाचरण—माता जी ने क्या कहा था....इस बात पर....

हरिश्चन्द्र—आप जान कर आ रहे हैं तब फिर मुझसे क्यों कहलाना चाहते हैं.. ?

राधाचरण—इसलिये कि आप कह देते हैं या लजाते हैं।

हरिश्चन्द्र—मेरी निर्लज्जता सरकार जानते हैं। दिन में सूर्य का छिपना माना जा सकता है। पर कोई न मानेगा कि मैं कभी लजाता भी हूँ।

राधाचरण—आप वह बात कहिये जो माता जी ने कहा था।

हरिश्चन्द्र—उन्हीं के शब्दों को दुहरा देता हूँ मैं तब...

राधाचरण—यही सही...

हरिश्चन्द्र—हरी, इस हाथ का पुण्य सोने की चूड़ियों में नहीं; दीन-दुखियों को भोजन बनाकर खिलाने में है। उनकी बात सुनकर मैं सन्न रह गया। सचमुच दान की महिमा वे जानती हैं। हमारे जैसे लोग दान में भी यश और नाम की कामना करते हैं।

राधाचरण—आप अपने को सब कहीं छोटा करना चाहते हैं यह मैं नहीं मानूँगा। सब कुछ लुटा देने वाला यश की कामना से दान करता रहा यह बात मैं नहीं मानूँगा।

हरिश्चन्द्र—आपसे तो मन्त्र लिया पर दिया क्या ?

राधाचरण—पर मेरे शिष्यों में कितने हैं जो अपने यश के शरीर से जीते रहेंगे। आप कदाचित नहीं जानते...शिष्य के सभी कर्मों का आधा फल गुरु को मिलता है [**हँसते हैं हाथ में गहने का चाँदी का डब्बा लिये माधवी का प्रवेश.. मल्लिका भी उसके साथ है। माधवी नीचे बैठकर गहने का डब्बा खोलती है।**]

राधाचरण—[मुस्करा कर] यह सब क्या दिखा रही हो माधवी! कुछ अपने पहन लो...कुछ मल्लिका को पहिना दो।

माधवी—यह मैं आपको देने के लिये ले आयी हूँ...

राधाचरण—[विस्मय में उसकी ओर देखकर] क्या बात है? तुम अभी रोती रही हो क्या?

माधवी—रोने को ही मैं इस धरती पर आयी थी।

राधाचरण—तब तक इसे ले चलो, दान भी शान्त चित्त से किया जाता है।

माधवी—महाराज! जब तक इसका मोह मुझसे छूट न जायगा मेरा चित्त शान्त न होगा। इसे देखकर मुझे डर लगता है।

राधाचरण—बात क्या है? क्यों...ऐं माधवी! तुम्हारे मुख पर कोई दारुण संकल्प देख रहा हूँ मैं...

माधवी—अग्नि और गुरु के स्पर्श से सब शुद्ध हो जाता है।

राधाचरण—दिन में जितनी बार कहो मैं तुम्हारा स्पर्श करूँ। आज पूजा में आरती तुम्हीं ने दिखायी...मैं तुम्हें अशुद्ध नहीं मानता। अग्नि में तपे सोने सी तुम शुद्ध हो। यह भ्रम

तुम्हें कैसे हो रहा है कि मैं तुम दोनों को अशुद्ध मानता हूँ ?

माधवी—[मल्लिका की ओर संकेत कर] मैं इनसे कह चुकी हूँ।

हरिश्चन्द्र—[उसकी ओर एकटक देखकर] मल्लिका....!

मल्लिका—[हरिश्चन्द्र की ओर देखकर] इन्हें डर है जब तक ये गहने इनके पास रहेंगे आप अच्छे न होंगे। [**उदास होकर सिर नीचे कर लेती है ।**]

माधवी—दो चूड़ियों को छोड़कर मेरे पास अब कुछ न रह जाय। मेरे भीतर कोई पुकार पुकार कर कह रहा है इस सोने का मोह छोड़ दो...नहीं तो...

[**सिसक कर रोने लगती है। मल्लिका उसे पकड़कर बैठ जाती है। राधाचरण और हरिश्चन्द्र परस्पर एक दूसरे की ओर देखते हैं।**]

राधाचरण—कौन कहेगा माधवी सती नहीं है...पतिव्रता नहीं है। ब्रह्म समाजी सही कह रहे हैं विवाह का आधार प्रेम होना चाहिए। कलकत्ते में ऐसे विवाह बराबर पत्रों में छपते हैं।

हरिश्चन्द्र—मैं भी कहूँगा महाराज... इसके भीतर का यह सन्देह निकल जाय। अब आप यह सन्देह नहीं निकालेंगे तो दूसरा कौन...?

राधाचरण—माधवी के शरीर का शृंगार मैं उतार लूँ...और क्या करूँगा मैं यह सब...आप जानते हैं...रजवाड़ों से ही मुझे कितना अधिक मिल जाता है।

हरिश्चन्द्र—आप अपनी शिष्या को जैसे सन्तुष्ट करें... इस विषय में मेरा कुछ कहना...

राधाचरण—अच्छी बात... आपके लिये इसे अपने शरीर के शृङ्गार से भी अरुचि हो रही है।

हरिश्चन्द्र—मुझे ही यह अपने शरीर का शृंगार मान बैठी है तो क्या कहूँ।

राधाचरण—पति स्त्री के हृदय का, प्राण का शृंगार होता है। शरीर सजाने के लिये गहने ही बने हैं।

माधवी—गोसाईंजी ! मैं अब तपस्विनी सी रहना चाहती हूँ।

राधाचरण—तब चलो कहीं धूनी रमाओ... पर कभी इनका सपना भी न देखना... भूल सकोगी इन्हें... तब चलो मेरे साथ वृन्दावन। वहाँ भगवान् का कीर्तन करना।

माधवी—अभी तो नहीं... पर भाग्य के फेर से जो कभी वहाँ आऊँ तो क्या भगवान के कीर्तन का अवसर मिलेगा ?

राधाचरण—बराबर... कल रात को... आज सबेरे तुम ऐसी नहीं थीं। इस समय इतनी उदास क्यों हो ?

हरिश्चन्द्र—यह डर रही है... इस बार उदयपुर की यात्रा से लौटूँ या नहीं।

राधाचरण—क्या ... इस कलियुग में किसी गुरु में अब वह शक्ति तो नहीं है फिर भी मेरा मन कहता है आप सकुशल लौट आयेंगे। और फिर यात्रा के अवसर पर रो रही है ? हँसकर आनन्द से विदा करना चाहिए तुम्हें !

माधवी—[एक टक राधाचरण की ओर देखकर] लौट आयेंगे ? कह रहे हैं आप ! **[गहरी साँस]**

राधाचरण—हाँ...हाँ...गु की बात में जो तुम्हें विश्वास हो तो यह रोना धोना छोड़कर हँसो खेलो।

माधवी—खेलूँगी महाराज !

राधाचरण—वैष्णव कभी दुःख मानते ही नहीं। उनका धर्म गाने बजाने, हँसने खेलने का है।

माधवी—रात आप गये यहाँ से तो पकड़े नहीं गये ?

राधाचरण—[डब्बे की ओर संकेत कर] यह ले जाकर पहले रख आओ...इसकी आवश्यकता जब तुम्हें न होगी...मैं ले लूँगा।

हरिश्चन्द्र—आपको देने का संकल्प करने पर भी ले जाय यह...

राधाचरण—मेरी धरोहर समझे। कभी कभी पहन भी लिया करेगी।

हरिश्चन्द्र—और जब संकट में पड़ेगी बेच लेगी...[**दुःख की हँसी**]

राधाचरण—मेरे रहते इस पर कभी कोई ऐसा संकट नहीं आयेगा जिसमें इसे गहने बेचने पड़ें...

हरिश्चन्द्र—ले जाओ अब माधवी...अपने गुरु की इस धरोहर को रख दो। किसी समय मेरे न रहने पर जब यहाँ काशी में रहना तुम्हारे लिये कठिन हो जाये, इसे लेकर वृन्दावन चली जाना।

राधाचरण—भगवान न करें ऐसा हो...पर क्या गोकुल इसके प्रति अपना कर्तव्य न निभायेंगे ?

हरिश्चन्द्र—इसी से तो रोती रही है कि कभी इसे उनकी दया पर न

जीना पड़े । ठीक भी है। मेरे हृदय पर इतने दिन राज्य करती रही यह...यह आँचल भी पसारेगी तो केवल अब भगवान के सामने। इस मानिनी का मान अब इसी में रहेगा।

राधाचरण—भारतेन्दु जी...!

हरिश्चन्द्र—जी...

राधाचरण—सुनता आया आप लोक व्यवहार से परे हैं। मान अपमान का ध्यान आप को नहीं होता।

हरिश्चन्द्र—मुझे नहीं होता...पर से होता है। इसे मैं जानता हूँ। प्राण की चिन्ता इसे कभी नहीं हुई। रूप का अहंकार भी कभी इसके मन में नहीं आया। गोकुल अभी इससे कह गये हैं आग की लपट बनकर यह उनके घर में घुसी थी... और वह घर जल गया।

माधवी—उनके घर में मैं कभी नहीं गयी। रेहन के पाँच सौ रुपयों का तेरह सौ वसूल किया उन्होंने। लेन देन के लिये कहीं जाना किसी के घर में जाना नहीं है। आये थे अभी मुझसे कहने कि मैं उदयपुर की यात्रा रोक दूँ। रोकना तो मैं चाहती थी पर जब वे यही चाहते हैं, मैं यह न चाहूँगी।

राधाचरण—अरे! हाँ, महाराज के यहाँ भी वे इसीलिये गये थे।

हरिश्चन्द्र—मेरे बाहर चले जाने पर उनके दलाल किसकी लाज उघेड़ेंगे और कहीं उधर मेरी बीमारी बिगड़ी और मैं न लौटा तो कम से कम मृत्यु में तो उनसे स्वतन्त्र रहूँगा।

राधाचरण—सगे भाई का प्रेम भी कारण हो सकता है उनके रोकने का...

हरिश्चन्द्र—प्रेम की भाषा मौन की होती है...जिस दिन उनका हृदय मुझसे साफ़ हो जायेगा। मैं भी जड़ नहीं हूँ कि उसका प्रभाव मुझ पर न पड़े...पर महाराज मैं अब जीना नहीं चाहता [**माधवी और मल्लिका की ओर संकेत कर**] इन दो बेड़ियों को कैसे काटूँ। इनके साथ छल करना पाप होगा नहीं तो अब तक...

राधाचरण—मल्लिका के लिये आपने पुस्तकों की कोई दूकान खोल दी है?

हरिश्चन्द्र—जी हाँ...'मल्लिका हरिश्चन्द्र कम्पनी' पर जो कहीं मेरी भविष्यवाणी सही हो तो हिन्दी में लेखक होंगे पर पाठक नहीं। जहाँ तक गंगा पश्चिम से पूर्व की ओर बही हैं साहित्य का अनुराग बहा ले गयी हैं। काशी में उत्तर दक्षिण हैं यही कुशल समझिये। कला और साहित्य के लिये कुछ निश्चित संस्कार चाहिए जो इधर के लोगों में नहीं है।

राधाचरण—यह कि दूकान में बिक्री नहीं होती।

हरिश्चन्द्र—बिल्कुल नहीं...पतंग की दूकान में भी कुछ निकलता पर ...पुस्तक की दूकान गले का घेघ या पैर का पीलपाँव समझिये।

[**मल्लिका माधवी हँसती हैं। राधाचरण भी हँस पड़ते हैं।**]

राधाचरण—क्यों मेरा कहा मानोगी माधवी ?

माधवी—जो कहें महाराज...!

राधाचरण—तुम दोनों ये गहने पहन कर तो आओ।

मल्लिका—मैंने कभी नहीं पहना...मैं तो... [**संकोच में जैसे गड़-जाती है।**]

माधवी—उठो चलो...जो कभी नहीं किया गोसाईंजी की आज्ञा से करो।

हरिश्चन्द्र—सरस्वती का संग फूल से है, सोने से नहीं। छोड़ दो माधवी उसे। उसके मन में यह इच्छा न जगे।

माधवी—तब इसका न्याय गोसाईंजी करेंगे। जो कुछ मेरा था उसमें इनका भाग लग गया तो इसमें क्यों नहीं लगेगा...?

हरिश्चन्द्र—बड़ी चंट हो तुम...[**बनावटी क्रोध**]

माधवी—भला अब आपको यह ज्ञान हुआ। [**मल्लिका को खींचकर भीतर ले जाती है।**]

राधाचरण—मल्लिका पर ब्रह्म समाज का प्रभाव है। गहने पहनना यह कुरुचि समझती है।

हरिश्चन्द्र—जी...ब्रह्म समाज की यही कमी समझता हूँ मैं। स्त्री श्रृंगार न करे और पुरुष व्यायाम न करें...खुल कर हँसें न...इससे जीवन की जड़ें सूख जायेंगी। कुछ दिनों में बंगाल के ब्रह्मसमाजी कहने लगेंगे...श्रृंगार रस के गीत न गाओ, गोपाल का श्रृंगार न करो...भगवान की

कथा न सुनो...गोपियों के साथ भगवान का विहार और रास भूल जाओ...

राधाचरण—इस युग में भी आप इस को चलाना चाहेंगे ?

हरिश्चन्द्र—और नहीं तो क्या...गिर्जाघरों पर जो सब ओर सूली का खम्भा खड़ा हो रहा है उसकी छाया में बैठकर, आनन्द से मुख मोड़ कर, बलिदान का नारा लगाऊँगा ! जिस धर्म में सूली पर लटक जाना सबसे बड़ी बात है उस धर्म में रस क्या है...जिससे उसमें मन रमेगा !

राधाचरण—आपके कहने का अर्थ कि धर्म में भी रस की धार बहनी चाहिए।

हरिश्चन्द्र—नहीं तो फिर किस लिये कोई मानेगा कि धर्म भी कुछ है। तब तो हमसे अच्छे जंगल के जीव होंगे जो हर नयी ऋतु के साथ रोयें झाड़ देते हैं। मृत्यु और पराजय का भाव मन में लेकर चलना...मनुष्य के विवेक के अनुकूल नहीं है। ब्रह्म समाजी जहाँ एक ओर अतीत की ओर अभिमान दे रहे हैं, साहित्य कला को नयी राह दे रहे हैं, वहीं वे यह भूल कर रहे हैं कि आनन्द की गतिमती गंगा को छोड़कर बुद्धि के सँकरे गढ़े में वे सब को ढकेल रहे हैं।

राधाचरण—समझ नहीं रहा हूँ मैं...

हरिश्चन्द्र—होली दिवाली मनाना हम छोड़ दें...तीर्थ और व्रत न करें...साहित्य में भूलकर भी शृंगार और प्रेम की बात

हम न करें...हमारा मन जो अब तक इन्हीं बातों से भरा रहा...इनको छोड़कर कितना बड़ा खोखला हो जायेगा? उसे हम भरेंगे किस विश्वास से? कम से कम इतना तो आप मानेंगे...उसे भरा रहना चाहिए। उसका खोखला होना हमारे समूचे जीवन को नीरस कर देगा। तब तो ऐसे जीवन का भार ढोने से अच्छा होगा आत्मघात कर लेना!

राधाचरण—गोपाल! गोपाल! आत्मघात से बड़ा पाप शास्त्रों में दूसरा नहीं है।

हरिश्चन्द्र—वे शास्त्र उन लोगों के हैं, जिनके भीतर जीवन का आग्रह था, बाहर की आँखें मूंद कर भीतर की आँखों से जो सृष्टि का रहस्य देखते थे। मौन रहने वाले को जो सबसे बड़ा मानते थे। आज के ब्रह्म-समाजी जीभ की नोक से इस देश को नये सिरे से गढ़ना चाहते हैं। भागवत के रास वर्णन को जो गन्दा कहते हैं पर किसी भी सुन्दरी विधवा को बिना सुहागिन बनाये नहीं रहना चाहते।

राधाचरण—सुनते हैं वे लोग पुरानी रूढ़ियों को तोड़कर समय के अनुकूल समाज की रचना करना चाहते हैं...सभी युगों में यह होता आया है इतना तो आप मानेंगे!

हरिश्चन्द्र—जी...पुराने बीज से नये पेड़ उगते हैं...पर यहाँ पुराने का नाम लेकर नये के बीज डाले जा रहे हैं...जिस

जाति की रूढ़ियाँ मिट जाती हैं वह जाति भी मिट जाती है।

राधाचरण—आर्य समाज के बारे में आपके मत क्या हैं ?

हरिश्चन्द्र—आर्य समाज अपनी धरती पर खड़ा हो रहा है। जैसे हम अपने शरीर का संस्कार करते हैं उसी तरह आर्य समाज हमारे धर्म का संस्कार कर रहा है। उसमें परिवर्तन की शक्ति फूट रही है, अनुकरण की नहीं। ब्रह्म समाज हमें अंग्रेज बनाना चाहता है पर आर्य समाज संसार भर में अपनी जातीय प्रतिष्ठा बना रहा है। अंग्रेज हम कभी नहीं बनेंगे। हमें केवल नेटिव रहना है... ईसाई बन कर भी।

राधाचरण—आपके विषय में बड़ा भ्रम रहा...

हरिश्चन्द्र—[हँसकर] यही लिखा कर आया था मैं...

राधाचरण—अंग्रेजी राज्य का कोप भी आप पर हुआ और कुछ लोग यह भी कहते हैं कि आप अंग्रेजी राज्य के भक्त भी हैं।

हरिश्चन्द्र—कृष्ण के तलवे में व्याध का बाण लगा था। उनके सामने कितना हीन हूँ मैं... और फिर कुछ बातों का खेद मुझे है।

राधाचरण—किन बातों का...

हरिश्चन्द्र—फिर आप सुन लें... देश भर में जो कलक्टर नियुक्त हैं, ये सभी बाघ बन रहे हैं... जनता के लिये... इनके

नीचेवाले हाकिम चीते हैं... उनके नीचे वाले भेड़िये और जो सबसे नीचे हैं वे गीदड़ हैं । ये सभी मांसाहारी हैं। देश की जनता इनके आतंक से थर-थर काँप रही है। हिंसक जीव एक बहुत है, यहाँ तो इतने हैं! राजभक्ति की मेरी कवितायें भय में लिखी गयी हैं... कब किसका मुँह मेरे कंठ पर पड़ेगा और कब किसका पंजा मेरे पेट पर इसी भय में... [**निराश से देखते हैं।**]

राधाचरण—इतने क्लेश से न देखें। राजपूताने के राजा लोग जब पसीने-पसीने हो रहे हैं तो फिर आपकी क्या बात!

हरिश्चन्द्र—साँस लेने को भी हम स्वतन्त्र नहीं हैं। ऐसी दुर्गति हो गयी इस देश की! अपनी ही तलवार से हम हार गये... संसार के इतिहास में किसी जाति का कभी इतना अधिक पतन न हुआ होगा।

राधाचरण—अपनी ही तलवार से...

हरिश्चन्द्र—नहीं? दक्षिण की लड़ाइयों में हमारे देश के सिपाही हमारे विरोध में खड़े रहे। अपने माँड़ पीकर काल काटा अभागों ने और साहबों को भात खिलाया। पलासी में भी हमारे ही भीतर से देशद्रोही निकले। सिराजुद्दौला का अन्त क्लाइव ने नहीं मीरन ने किया। कलकत्ते से लेकर दिल्ली तक जब स्वतन्त्रता की भेरी बजी, पंजाब के सिक्ख गुरुगोविन्द सिंह के सिपाही अंग्रेजों के साथ रहे। अपनी तलवार से अपना ही गला कटा।

राधाचरण—अब यह देश स्वतन्त्र नहीं होगा।

हरिश्चन्द्र—जी...नहीं...निराश होना मैं जानता ही नहीं। होगा...होकर रहेगा।

राधाचरण—यह किस तरह...?

हरिश्चन्द्र—जानता मैं भी नहीं, मेरा मन कह रहा है...यह देश कभी करवट लेगा। शेषनाग की तरह इसकी कुण्डली हिलेगी कभी...कोई अवतार होगा जो इस देश को कुम्भकर्ण की नींद से जगायेगा। सूर्य नित्य डूबता है और अंग्रेज कभी नहीं डूबेंगे? यह विश्वास मैं नहीं कर सकता। **[प्रेमघन का प्रवेश]**

राधाचरण—आइये प्रेमघन जी! कहिये क्या कर आये?

प्रेमघन—[हरिश्चन्द्र के निकट नीचे बैठते हुए] शंकर की इस पुरी में जहाँ देखिये वहीं घाटों पर सिलबट्टे चल रहे हैं। बादाम बिना पानी के ऐसी पीसी जाती है कि बट्टा चिपक कर सिल उठा लेता है। शीतलाघाट पर तीन सिलबट्टे एक ही जगह चल रहे थे। पीसने वालों की बाहें फूल गयी थीं। ऐसी होड़ लगी थी।

राधाचरण—किस बात की?

प्रेमघन—किसकी बादाम ऐसी लस्सी बाँध लेती है कि बट्टा पकड़कर उठाने पर सिल भी उठ जाय। पसीने की बूँदें भी बादाम में पीसी जा रही थीं।

राधाचरण—[हँसकर] आप भी कहाँ की हाँकते हैं!

प्रेमघन—गोसाईं जी ! झूठ नहीं कह रहा हूँ। अखाड़े का पसीना तो धूल में लिपट जाता है। पर भाँग पीसने में जो यह पसीना चलता है। बाल के भीतर से झरने की तरह... जैसे सहस्रबाहु ने अपनी हजार बाँहों से नर्मदा का पानी रोक दिया हो और वह हजार धाराओं में होकर नीचे आ रहा हो। नर्मदा का धुँआधार जिसे काशी में देखना हो इन भाँग पीसने वालों को देख ले।

हरिश्चन्द्र—प्रेमघन जी की कविता जाग उठी है।

प्रेमघन—जी....नाव पर थोड़ी गहरी ले ली और आँखों ने जो यह दृश्य देखा तो फिर दूनी हो गयी।

राधाचरण—तब कहिये आँख से देखने से भी आप पर नशा चढ़ जाता है !

प्रेमघन—जी...केवल मुझी पर...यह इस अवस्था में सब पर चढ़ जाता है। देख लेने से ही। पुरूरवा पर भी तो देख कर ही चढ़ गया था !

हरिश्चन्द्र—भले आदमी...इस अवस्था में सभी पुरूरवा और दुष्यन्त होते हैं। और जो न हो...समझो उसका अभाग है।

प्रेमघन—गोसाईंजी की राय इस विषय में पक्की होगी।

राधाचरण—अच्छा तो आप मुझसे भी स्वीकार कराना चाहते हैं ?

प्रेमघन—जी...सुना है वैष्णवों में देखकर ही भक्ति का भाव भी बढ़ता है। देखते ही जिस पर प्रेम का रंग न चढ़ा वह भी कोई वैष्णव है ?

राधाचरण—फिर जब आप जानते हैं तो...

प्रेमघन—दुष्यन्त भी वैष्णव रहा होगा।

हरिश्चन्द्र—चुप न रहोगे... [**राधाचरण और प्रेमघन ठठाकर हँसते हैं।**]

राधाचरण—नहीं तो फिर तपोवन में वैसा सात्विक कार्य कैसे करता ?

हरिश्चन्द्र—दुष्यन्त का कार्य आप सात्विक नहीं मानते ?

राधाचरण—सात्विक न होता तो भरत जैसा पुत्र कहाँ से आता ! इसीलिये तो कहा है काव्यों में नाटक रम्य है, नाटकों में 'अभिज्ञान शाकुन्तल' उसमें भी चौथा अंक और चौथे अंक का चौथा श्लोक।

प्रेमघन—क्या है चौथा श्लोक...

राधाचरण—भारतेन्दुजी से पूछो।

हरिश्चन्द्र—संस्कृत मैंने कभी पढ़ी तो है नहीं, पंडितों से सुन-सुन कर काम चला लेता हूँ।

राधाचरण—आप तो संस्कृत में समस्या पूर्ति करते हैं।

हरिश्चन्द्र—प्रेमघन !

प्रेमघन—[हँसकर] हाँ ! क्या...

हरिश्चन्द्र—तुम जानते हो...

प्रेमघन—जान कर भी अनजान बन जाता हूँ।

हरिश्चन्द्र—अच्छी बात ...बनो अजान फिर यह इतना मेरे जीवन का झूठ है। गोस्वामीजी, संस्कृत में थोड़ी पढ़ समझ लेता हूँ...सुभाषित के कुछ श्लोक भी रटे हूँ पर मैं संस्कृत जानता नहीं...

राधाचरण—पर समस्या पूर्ति...

हरिश्चन्द्र—पं० शीतलाप्रसाद तिवारी से दो एक बनवायी पहले... लोगों में अपनी कहकर सुना भी दिया। एक दो बार फँसकर फिर निकल न सका। जब कभी ऐसा अवसर आया उनसे बनवा लिया। काशी के ब्राह्मण की विद्या का प्रचार वैश्य ने अपने नाम से किया महाराज... सत्य यह है।

राधाचरण—[हँसकर] क्या कह रहे हैं आप !

हरिश्चन्द्र—जी, बचपन में चोरी से सुर्ती खाकर जैसे लोग बुढ़ापे में सब ओर हाथ फैलाते चलते हैं, मेरे पूर्वज दूसरों के धन की ताक में लगे रहे...उनकी जाति का धर्म था यह...पर मुझे देखिये मैं दूसरे की विद्या डकार गया।

प्रेमघन—तब क्या...विद्या भी किसी एक व्यक्ति की है। उसे भी तिजोरी में बन्द कर पहरा बैठा देना है।

हरिश्चन्द्र—प्रेमघन ! [उदास से देखते हैं।]

प्रेमघन—आपकी तबियत ठीक नहीं है...अब आप विश्राम करें।

हरिश्चन्द्र—पूरी संस्कृत न जानने वाला यहाँ अर्धशिक्षित है या सच तो यह होगा कि अशिक्षित है। मैं अपने को शिक्षित नहीं मानता। यों मुद्राराक्षस का अनुवाद...जयदेव के पदों का अनुवाद...

राधाचरण—आपके अनुवाद मूल से मिल जाते हैं। कौन कहेगा आप संस्कृत पूरी नहीं जानते !

हरिश्चन्द्र—[खेद की हँसी] ह...ह...मैं जानता हूँ गोस्वामी जी...

मेरा मन जानता है... समूचे संसार को ठगा जा सकता है पर अपने मन को नहीं... मैं तो अपने मन को भी ठगता रहा हूँ। व्यसन के रूप में अपनाया था साहित्य को मैंने... साहित्यकार या राजकुमार होता है या सन्त... मैं इन दोनों में एक भी नहीं हूँ।

प्रेमघन—दोनों...दोनों हैं आप। [**विश्वास और निष्ठा के भाव में**]

राधाचरण—और व्यसन से न राजकुमार छूटता है न सन्त...दोनों के व्यसन दो तरह के होते हैं पर होते हैं वे व्यसन...

प्रेमघन—मनुष्य होने के लिये व्यसन भी चाहिये...नहीं तो फिर मनुष्य और पशु में अन्तर कितना होगा...पशु में व्यसन नहीं होता इतना तो सभी जानते हैं।

हरिश्चन्द्र—हा...हा...हा...चुप नहीं रहोगे तुम...मनुष्य का मानदंड तुम्हारे लिए यही है?

प्रेमघन—गोस्वामी जी! किसी को प्रेम का व्यसन होता है, किसी को मान का, यश का, त्याग, दया और दान का, किसी को बुद्ध की तरह निर्वाण का व्यसन होता है। इतने बड़े संसार में एक भी मनुष्य कहीं ऐसा मिलेगा जिसमें कोई न कोई व्यसन न हो? मनुष्य के नीचे-ऊपर; आगे-पीछे सब कहीं व्यसन मिलेगा। जहाँ यह नहीं मिलेगा, मनुष्य भी नहीं मिलेगा।

हरिश्चन्द्र—चुप रहिये धर्मावतार! सुन लिया··आपका ज्ञान...

आज रंग कुछ अधिक आ गया है, क्यों ?

प्रेमघन—फिर भी तो नहीं मानते थे आप...गोस्वामी जी के लिये...अपने लिये भी पिलाने से मन न भरा तो...

हरिश्चन्द्र—हैं...हैं...गुरू के सामने सब कह डालोगे !

राधाचरण—तो अब आप भी छिपाने लगे।

हरिश्चन्द्र—जब तक मंत्र नहीं लिया था तब तक...

राधाचरण—सब छूट थी, अब रोक है...

हरिश्चन्द्र—जी, सो तो है ही...

प्रेमघन—मैं कह रहा हूँ स्वामीजी सुनिये...

हरिश्चन्द्र—[असमंजस में] माधवी और मल्लिका के नाम पर भी एक-एक घूँट पी लिया इन्होंने...

राधाचरण—हा...हा...हा...आपने कहा था उन दोनों के लिये भी...

हरिश्चन्द्र—जी...आपके लिये...अपने लिये...उन दोनों के लिये भी...गंगा के भीतर बूटी छानने का अवसर कौन जाने फिर न मिले। शंकर का प्रसाद भाग्य से मिलता है।

राधाचरण—भारतेन्दुजी, यह आप क्या कह रहे हैं ! आप शतायु हों...हम लोगों की आयु लेकर जीवित रहें आप...क्यों प्रेमघन जी...!

प्रेमघन—मैं तो दस वर्ष की आयु इन्हें दे दूँ...भगवान करें ऐसा ही हो...

हरिश्चन्द्र—मूर्ख...! छोटे की आयु लेकर बड़ा जीना चाहेगा ?

शंकर का प्रसाद अब गंगा में मुझे नहीं मिलेगा। गोस्वामी जी! उदयपुर की इस यात्रा से जो मैं लौट भी आया ...फिर भी इस शरीर का अब भरोसा नहीं है।

राधाचरण—आपको सन्देह है...

हरिश्चन्द्र—जी, यह शरीर अब अधिक दिन न चलेगा...कवित्त बनाने में जो मौज तब मिलती थी, अब नहीं मिलती... अब भीतर रस नहीं है। बाढ़ निकल गयी कीचड़ सूख रही है। कुछ दिनों में यहाँ दरारें पड़ जायेंगी...उसके पहले चोला छूट जाय यही ठीक होगा गोस्वामीजी... **[हृदय पर दायें हाथ की हथेली रख लेते हैं।]**

राधाचरण—तब आपको उदयपुर नहीं जाना चाहिये। शंका भूत बन जाती है।

हरिश्चन्द्र—न जाकर भी मैं अब कुछ दूसरा नहीं हो जाऊँगा।

राधाचरण—आप मेरे साथ वृन्दावन चलिये...वहाँ आपका मन बहल जायगा।

हरिश्चन्द्र—हल्दीघाटी, एकलिंग और नाथद्वारे का संकल्प छोड़कर... स्वतंत्रता और बलिदानों की उस जन्म-भूमि का आवाहन छोड़कर...उचित होगा यह करना...कम से कम आप न रोकें। **[कातर आँखों से देखकर हाथ जोड़ लेते हैं।]**

राधाचरण—ऐसे कातर न हों...आप की यात्रा शुभ रहे। सन्देह को यहीं गंगा में बोर कर जाइये। इच्छाशक्ति जब तक आपके साथ है शरीर चलता रहेगा।

हरिश्चन्द्र—देखिये महाराज जो हो...आपका स्नेह रहे...[**कई बार सिर हिलाकर**] सन्देह में यहीं गिरा देता हूँ।

[**नेपथ्य में माधवी की हँसी। मल्लिका का धीमा स्वर।**]

प्रेमघन—बेचारी सीधी मल्लिका को हैरान कर रही है।

हरिश्चन्द्र—उसके लिये तुम्हारे हृदय में दया है प्रेमघन!

प्रेमघन—[संकोच में] ऐं...ऐं...

हरिश्चन्द्र—उस पर तुम दया करते हो?

प्रेमघन—मैं...मैं...[**झेंप जाते हैं।**]

हरिश्चन्द्र—भले आदमी...बिना दया के कोई किसी को बेचारी नहीं कहता। साँस न अटक जाय तुम्हारी...किसी दूसरे मतलब से नहीं कह रहा हूँ...

प्रेमघन—[मुस्कराकर] उस दशा में और न होगा आप दान कर देंगे।

हरिश्चन्द्र—हा...हा...हा...सुन रहे हैं गोस्वामीजी...मैं इन्हें दान कर दूँगा!

राधाचरण—[न समझकर] क्या दान चाहते हैं ये...

हरिश्चन्द्र—मल्लिका का दान चाहते हैं...

राधाचरण—अरे! क्यों प्रेमघन जी...भला...गोपाल! गोपाल!

प्रेमघन—जी याचक क्या जाने दानी क्या दान करेगा? उसे जो मिल जाय...

हरिश्चन्द्र—तुम बड़े नटखट हो...

प्रेमघन—अब पता चला है आप को पूरे पाँच वर्ष के बाद...
मिर्जापुर में गंगा भी नटखट हैं फिर मैं तो...

हरिश्चन्द्र—जी ! हाथ पैर वाले भला आप... [**उनकी ओर देखकर मुस्करा पड़ते हैं।**]

राधाचरण—अब चला जाय भारतेन्दु जी...आलस आ रहा है।

हरिश्चन्द्र—दोनों शिष्यायें हैं आपकी यहाँ...देह दबा दें...

राधाचरण—मुझसे भी परिहास...

हरिश्चन्द्र—अपने स्वभाव से विवश हूँ...गुरु होकर भी आप मुझसे छोटे हैं...और फिर आपके सामने जो हृदय न खुला...साँस और परिहास...एक मानता हूँ मैं दोनों को...बिना परिहास के साँस चल न सकेगी।

प्रेमघन—ह....ह...गोस्वामी जी ! रात आप यहाँ से लौटे तब पिता जी सो गये थे ?

राधाचरण—हाँ नाक बज रही थी। कपड़े बदल कर मैं खटर पटर करने लगा। सोना और जागना तो उनका पता नहीं चलता। बात करते-करते उनकी नाक बजने लगती है फिर तुरन्त ही 'माधव' 'माधव' करने लगते हैं।

प्रेमघन—जी तब क्या हुआ...

राधाचरण—'लल्ला कितै गयो' बोल पड़े। मैं तो यही चाहता था। कह पड़ा, 'सोइये आप यहीं हूँ'। उनके लिये मैं अभी गोद का बालक हूँ...कहीं भूल भटक न जाऊँ सम्प्रदाय के घेरे के बाहर तो पहले पहल रात निकला। सुन लें कि

मैं यहाँ आता हूँ। आप लोगों के साथ नाव पर भंग छानता हूँ तो फिर बिना पंचगव्य पिलाये न मानें।

हरिश्चन्द्र—कल मैं उनके दर्शन को चलूँगा। देखें मुझ नास्तिक को क्या कहते हैं!

राधाचरण—आपका जादू उन पर भी व्याप जायेगा। इन्हें भी लेते आइयेगा।

हरिश्चन्द्र—उन दोनों को भी गुरुपीठ ले चलूँगा मैं।

राधाचरण—अपने साथ? पहचाननेवाले लोग होंगे वहाँ...

हरिश्चन्द्र—जो काम कोई दूसरा नहीं कर सके...मैं वही करता हूँ। बड़े महाराज जान लें इस काशी में कोई है जो अपना पाप भी उस तरह प्रकट कर देता है, जैसे यहाँ गंगा और विश्वनाथ प्रकट हैं।

राधाचरण—पर...

हरिश्चन्द्र—वहाँ हम लोग ऐसे रहेंगे जैसे आपसे कभी का परिचय न हो।

राधाचरण—आप कुछ दूसरा न समझेंगे...उनके विश्वास और विचार...

हरिश्चन्द्र—जी, इस नये संसार को वे स्वीकार नहीं करेंगे... फिर भी वे अपने युग में सत्य हैं। और आप अपने युग में...फिर भी आप निश्चिन्त रहें, वे ही मुझे आपका परिचय करा देंगे।

[मल्लिका का हाथ पकड़े माधवी का प्रवेश। माधवी पहले की साड़ी में बिना गहने के है। मल्लिका कामदार साड़ी गहरे लाल रंग की पहने है और पोर-पोर गहने से लदी है। संकोच से उसकी आँखें धरती में गड़ी हैं। माधवी उसकी ओर देखकर मुस्करा रही है।]

राधाचरण—[विस्मय में] आप तो वैसी हैं।

मल्लिका—जी...किसी की शपथ देकर सब गहने पहना दिया... नहीं तो पहले कभी नहीं पहना था...

हरिश्चन्द्र—क्यों माधवी शपथ दिया तुमने...

माधवी—ह...ह...ह...यों पहनने वाली यह कहाँ थी...इसकी देह के लिये गहने बिच्छू के डंक से हैं।

हरिश्चन्द्र—किसकी शपथ दी थी...

माधवी—यह बात कहने की नहीं है...

मल्लिका—[उदास मुद्रा में] और किसकी देतीं...

हरिश्चन्द्र—मेरी शपथ दी तुमने उसे...शपथ सच और झूठ दोनों पड़ती है।

माधवी—[भय में] हाय राम! **[आँसू चल पड़ते हैं।]**

हरिश्चन्द्र—परसों मैं मारवाड़ जा रहा हूँ, और आज तुम...

माधवी—अब तो कह दिया। मल्लिका बहन से अब ये गहने मैं न लूँगी।

हरिश्चन्द्र—पर वह गहने लेकर करेगी क्या?...बिना बान का चन्दन लिलार चराता है।

माधवी—तो अब क्या करूँ...गोस्वामी जी मैं चान्द्रायण व्रत करूँगी। इनका अनिष्ट न हो। [**धरती पर बैठकर हाथों से मुंह घेर लेती है।**]

हरिश्चन्द्र—तुम्हारे लिये यमराज से भी लड़ूँगा मैं डरो मत। इतनी सी बात में तुम इस तरह प्राण छोड़ रही हो तो च....च्च...च्च...हैं चुप रहो [**माधवी की देह हिल रही है।**]

माधवी—और कुछ सुनने के पहले गंगा की धार में...[**भरे कण्ठ से**]

हरिश्चन्द्र—गोस्वामी जी कब क्या होगा कह सकेगा कोई भी...

राधाचरण—कोई नहीं...

हरिश्चन्द्र—तब आप इसे देखियेगा। मेरे न रहने पर....

माधवी—हाय मैं यह सुनना भी नहीं चाहती।

हरिश्चन्द्र—मैं चला जाऊँगा माधवी! पर तुम्हें मेरी मर्यादा बनकर रहना पड़ेगा। उठो अभी मेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा। इस बन बिहंगिनी को बन्धनों से मुक्त करो। कल तुम दोनों को बड़े महाराज के यहाँ मेरे साथ चलना है। तब तक मैं गोस्वामी जी को पहुँचा आऊँ।

[**दोनों राधाचरण के पैर पर आँचल रखती हैं। राधाचरण दोनों के सिर पर हाथ रखकर उठते हैं, राधाचरण, प्रेमघन और हरिश्चन्द्र का प्रस्थान।**]

माधवी—मल्लिका! अब क्या होगा। [**उसकी आँखों में देखती है।**]

मल्लिका—[गाने की ध्वनि में] जाही विधि राखे राम ताही विधि रहिये....

[माधवी के कन्धे पर सिर रखती है। दोनों बाहें उसके कण्ठ में डालकर रो पड़ती है।]

माधवी—अरे ! चुप रहो। रोने का काम हृदय का है पगली...! जिस दिन मेधा रोने लगेगी...धरती पर...

मल्लिका— [भरे कण्ठ से] क्या...

माधवी—प्रलय होगा।

मल्लिका—कहाँ रहूँगी मैं..

माधवी—किससे पूछ रही हो बहन ! इस धरती से मेरा नाता तभी तक है जब तक वे हैं, उसके बाद...

मल्लिका—डूब मरोगी ?

माधवी—कुछ ऐसा करूँगी जिसका पता कभी किसी को न होगा। मुझसे कुछ न पूछो...उससे पूछो जिसने तुम्हारा जन्म दिया था...उस भगवान से...अन्त में वही सहारा सब का होता है।

मल्लिका—बंगाल में अब भगवान का नाम नहीं लेते बहन !

माधवी—पश्चिम की हवा में वहाँ लोग जड़मूल से उखड़ रहे हैं। हँसो...जब तक साँस है हँसती रहो। हाँ...हँसो [**उसे गुदगुदाने लगती है।**]

मल्लिका—हा...हा...हा...अरे छोड़ो। चलो कुछ गाओ। कोई ऐसा गीत जिसमें विरह का भय न हो।

माधवी—आओ...चलो ।

[नीचे बैठकर माधवी वीणा बजाने लगती है। मल्लिका उसके मुँह की ओर विश्वास से देखती है ।]

[पर्दा गिरता है]

—:०:—